प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मन्त्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तको का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर जरा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तको के नाम तथा स्थायी ग्राहक होने के नियम, पुस्तक के अंत मे दिये हुए हैं, इन्हें एक बार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

* ग्राहक नम्बर—

* यदि आप इस मंडल के ग्राहक हैं तो अपना नम्बर यहाँ लिख रखिये, ताकि आपको याद रहे। पत्र देते समय यह नंबर जरूर लिखा करें।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

साग्रह समर्पण

उन अनिच्छुक भाई-बहनों के हाथों में

जो

भोग-विलास को जीवन का सुख और ध्येय माने बैठे है, या

विवाहित होकर दु:खमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, या

विवाह को प्रकृति के धर्म का पालन समझ कर

विवाह की कल्पना से स्वर्गीय रस का

स्वप्न देखा करते हैं,

या जो

उच्छृंखल वैवाहिक जीवन व्यतीत कर दैव पर

दुष्टता का आरोप करते फिरते हैं।

अनुवादक

लागत का ब्योरा

कागज	... .	२३०) रु०
छपाई	... ...	२१०) ,,
बाइंडिग	... .	४-) ,,
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च		२७०) ,,
		७५०) रु०

कुल प्रतियाँ ३०००

लागत मूल्य प्रति संख्या ।)

दो शब्द

काउण्ट टाल्स्टाय की गणना यूरोप के महापुरुषों में की जाती है। वे एक महान् विचारक और कला-मर्मज्ञ हो गये हैं। जीवन को उच्च और सुन्दर बनाने वाले प्रायः प्रत्येक विषय पर उन्होंने दिव्य ग्रन्थों की रचना की है। मौलिकता और सूक्ष्मता उनकी विचार-प्रणाली के मुख्य गुण हैं। उनके दिव्य विचार हृदय में पैठे बिना नहीं रहते। 'स्त्री और पुरुष' उन्हीं की मार्मिक लेखनी से निकली, अपूर्व पुस्तक का अनुवाद है। इसका विषय है स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का आदर्श। टाल्सटाय ने ब्रह्मचर्य को आदर्श विवाह को मनुष्य-जाति की कमज़ोरी की रिआयत, और मानव-जाति की सेवा को उसका उद्देश माना है। हज़रत ईसामसीह की शिक्षाओं का यही सार आपने बताया है। उनका यह निष्कर्ष हमारे हिन्दू-धर्म के जीवनादर्श और विवाहोद्देश के बिल्कुल अनुकूल है। उनकी मूल पुस्तक ईसाई और यूरोपवासियों को ध्यान मे रख कर लिखी गई है. इस लिए उसमें ईसामसीह की शिक्षाओ का विवेचन प्रधान रूप से होना स्वाभाविक है।

भारतवर्ष के सामने भी इस समय स्त्री और पुरुष के पार-

स्परिक सम्बन्ध का प्रश्न बड़े विकट रूप मे उपस्थित है। ब्रह्म-चर्य के उच्च आदर्श तथा विवाह के सच्चे उद्देश को भूल जाने के कारण हमारा न केवल शारीरिक ह्रास ही हो रहा है, बल्कि मानसिक और आत्मिक पतन भी हो गया है और होता जा रहा है। विषय-क्षुधा के असहाय शिकार होकर हम एक ओर जहाँ दाम्पत्य-जीवन को कलह, व्याधि और अशान्तिमय बना रहे हैं, तहाँ दूसरी ओर समाज और देश को पतन के ग़लत रास्ते की ओर ले जा रहे है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह जैसे भयंकर राक्षस जिस समाज को एक ओर से लील रहे है और दूसरी ओर से जिसका युवक-दल असीम विपयोपभोग को ईश्वरीय इच्छा, प्राकृतिक धर्म का पालन समझ कर विनाश के गर्त मे गिरने मे मग्न है, उसके लिए ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन—ऐसे दिव्य विचाररत्नो का प्रचार, ईश्वरीय देन समझना चाहिए। विवाह और दाम्पत्य-धर्म से सम्बन्ध रखने वाली प्राय प्रत्येक महत्वपूर्ण गुत्थी पर इसमे दैवी प्रकाश डाला गया है—उसे एक प्रकार से मौलिक रूप से सुलझाने का यत्न किया गया है और मेरा ख़याल है कि टाल्स्टाय को उसमे पूरी सफलता मिली है।

ऐसी अनमोल और सो भी इतने गंभीर और महत्वपूर्ण विपय पर एक महान् क्रान्तिकारी मौलिक विचारक की लिखी पुस्तक के अनुवाद का अधिकारी मै अपने को नही मान सकता।

इस अधिकार-प्रवेश का साहस केवल इसी कारण हुआ है कि मुझे टाल्स्टाय का स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी आदर्श प्रिय है और उसके पालन का दीर्घ उद्योग किए विना मैं भारत की शारीरिक उन्नति और नैतिक विकास को असंभव मानता हूँ। लोहे की अँगूठी मे जड़ा यह रत्न पाठको को अखरेगा तो; पर आशा है वे यह समझ कर मेरे साहस को अपना लेंगे कि मेरे पास जो अच्छी से अच्छी चीज़ थी, उसी के साथ मैने इस रत्न को उनके अर्पण करने की चेष्टा की है। रत्न तो स्वयं प्रकाश्य होता है, लोहे मे से भी वह अपनी प्रभा फैलाये विना न रहेगा।

अनुवादक

महापुरुषों के अनमोल उपदेश

ब्रह्मचर्य की अखण्डता से परमात्मा का सहज मे लाभ होता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मानसिक संयम (ब्रह्मचर्य) से ही जीव का उद्धार निश्चय पूर्वक हो सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

हमे ऐसे मनुष्य चाहिए जिनके शरीर की नसे लोहे की भांति और स्नायु इस्पात की तरह दृढ़ हो। उनको देह मे ऐसा मन हो, जिसका संगठन वज्र से हुआ हो। हमे चाहिए पराक्रम, मनुष्यत्व, क्षात्रवीर्य, और ब्रह्मतेज। यह सब ब्रह्मचर्य से ही हो सकता है।

* * * *

यह संसार ही मातृमय है। कुभावना के लिए स्थान ही कहाँ। इस विचार से ब्रह्मचर्य के पालन मे कठिनता क्या है? माता स्वयं अपने पुत्रो की रक्षा करती है।

* * * *

'ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ।' यह योग-शास्त्र का बड़ा गम्भीर सिद्धान्त है। शरीर को रक्षा और पुष्टि के लिए ब्रह्मचर्य तथा व्यायाम आवश्यक है।

* * * *

स्त्री और पुरुष

समाज के प्राय: सब लोगो मे यह धारणा जड़ पकड़ गई है कि विषयोपभोग (मैथुन) स्वास्थ्य-रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है। झूठे विज्ञान के द्वारा इसका समर्थन भी किया जाता है। इस मान्यता को गृहीत करके लोग आगे कहते है कि चूँकि विवाह कर लेना प्रत्येक मनुष्य के हाथ मे नहीं है इसलिए व्यभिचार द्वारा अपनी विषय-क्षुधा को शान्त करना पूर्णतः स्वाभाविक है। सिवा पैसे के इसमे मनुष्य पर किसी प्रकार का बंधन भी नहीं है। अतः इसको उत्तेजना देना चाहिए।

यह भ्रम-मूलक धारणा समाज में इतनी फैल गई है कि कितने ही माता-पिता अपने बच्चे के स्वास्थ्य के विषय मे चिंतित हो, डाक्टर की सलाह लेकर अपने बच्चों को घृणित कार्य के लिए उत्साहित करते हैं। सरकारों का धर्म है कि वे अपनी प्रजा के नैतिक जीवन को उच्च बनाये रक्खें। पर वे भी दुर्गुणो को उत्तेजना देती हैं। पुरुषो की काल्पनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वे तो स्त्रियो के एक अलहदा वर्ग का ही संगठन करती हैं, जो उन वेचारियो को शारीरिक और आध्यात्मिक विनाश के

गड्हे मे ढकेल देता है और अविवाहित पुरुष बिलकुल चुपचाप इस बुराई के पंजे मे फँसते चले जाते हैं

मैं कहना चाहता हूँ कि यह बुरा है, यह अनुचित है कि कुछ लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए दूसरो के शरीर और अत्मा का नाश किया जाय। कुछ आदमियो का अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिए दूसरो का खून पीना जितना बुरा होगा उतना ही बुरा यह कार्य भी है।

मैं तो इससे यही नतीजा निकाल सकता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह इस गलती और भ्रम से अपने को दूर रक्खे। और इन बुराइयो से बचने का सब से सरल उपाय तो यही है कि वे किसी भी अनीतिकर शिक्षाओ पर विश्वास न करे। चाहे वह झूठा विज्ञान भी प्रत्यक्ष इसका समर्थन करे, तो भी मनुष्य को चाहिए कि वह उसकी तरफ़ ध्यान न दे। दूसरे, मनुष्य, अपने हृदय मे यह अंकित करले कि यह व्यभिचार जिसमें पुरुष अपने पापो के फलो से बचने की कोशिश करके उनका तमाम भार स्त्रियो पर डाल देता है, जो सन्तति-निरोध के लिये कृत्रिम उपायों की आयोजना करती है, केवल कायरता है। यह सुनीति का भारी से भारी उल्लंघन है। अतः पुरुषो को, यदि कायरता से बचना है तो इन पापो के जाल मे अपने को भूल कर न फॅसने देना चाहिए।

यदि पुरुष संयमशील जीवन पसंद करें तो उन्हे अपना जीवन-क्रम अत्यन्त सरल और स्वाभाविक बना लेना चाहिये। उन्हे न कभी शराब पीना चाहिए और न अधिक भोजन ही

करना चाहिये। मांसाहार भी छोड़ देना अच्छा है। परिश्रम से (यहाँ अखाड़े की कसरत से मतलब नहीं, बल्कि सच्चे थका देनेवाले उत्पादक परिश्रम से है) मनुष्य मुँह न मोड़े। मनुष्य अपनी माता, बहन, अन्य रिश्तेदार अथवा अपने मित्रों की पत्नियों से जिस तरह बच कर और सावधानतापूर्वक रहता है, वैसे ही अन्य अपरिचित स्त्रियों से भी रहने की कोशिश करे। यथा सम्भव स्त्रियों के साथ कभी एकान्त मे न ठहरे। यदि वह इतना जागरूक रहेगा तो अपने आस-पास वह ऐसे सैकड़ो उदाहरण देखेगा जो उसको सिद्ध करके देखादेंगे कि संयमशील जीवन व्यतीत करना केवल सम्भवनीय ही नहीं बल्कि असंयमशील जीवन की अपेक्षा कहीं कम खतरनाक और स्वास्थ्य के लिये कम हानिकर है।

यह हुई पहली बात

दूसरे, फैशनेबल समाज के दिल मे यह ख़याल जमजाने के कारण कि विषयोपभोग स्वास्थ्य-रक्षा के लिये अनिवार्य है, वह एक आनन्द-दायक वस्तु है, और जीवन में एक काव्यमय तथा उच्च कोटि का वरदान है, समाज के सभी अंगो मे व्यभिचार एक मामूली सी बात हो गई है। (मजादूरपेशा लोगो मे इस बुराई का कारण फ़ौजी नौकरी भी है।)

मेरा ख़याल है कि यह भी अनुचित है और इन सब बुराइयो को दूर करना परमावश्यक है।

इन बुराइयो को दूर करने के लिये यह परमावश्यक

है कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी प्रेम-विषयक जो कल्पनायें हैं, उन्हे बदल दें।। माता पिताओं द्वारा लड़के-लड़कियों को यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि विवाह के पहले तथा बाद मे स्त्री पुरुषो का आपस मे प्रेम करना और उसके बाद विषयोपभोग मे मग्न हो जाना कोई काव्यमय और तारीफ़ के योग्य उच्च बात नही है। यह तो पशु-जीवन का चिन्ह है जो मनुष्य को नीचे गिरा देता है।

वैवाहिक प्रतिज्ञा का भंग करने वाले की, समाज की ओर से कम से कम उतनी ही प्रताड़ना और भर्त्सना तो ज़रूर होनी चाहिये जितनी कि आर्थिक कर्तव्यो के भंग करने वाले अथवा व्यापार मे धोखेबाज़ी करने वाले की होती है। नाटक, उपन्यास, कविताये, गीत और सीनेमा द्वारा इस बुराई की प्रशंसा कर करके समाज के अंदर जो आज इसके भयंकर कीटाणु बुरी तरह फैलाये जा रहे हैं, इसको बिलकुल रोक देना चाहिये।

यह हुई दूसरी बात

तीसरे, विषयोपभोग को मिथ्या महत्व देने के कारण हमारे समाज मे संतानोत्पत्ति का सच्चा अर्थ नष्ट हो गया है। संतानोत्पत्ति विवाहित जीवन का उद्देश और फल होने के बजाय वह अब स्त्री पुरुषों के लिए विषय-सुख का बाधक मानी जाने लग गई है। फलतः डाक्टरो की सहायता से विवाह के पूर्व और पश्चात् संतति-निरोध के उपायो का काम मे लाया जाना एक मामूली से मामूली बात होती जा रही है। पहले गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के समय मे स्त्री पुरुष विषयोप-

भोग नहीं करते थे, आज भी पुराने परिवारों मे वह नहीं होता। पर अब तो यह गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के काल में भी विषयोपभोग करना एक मामूली रिवाज सा हो गया है।

यह भी नितान्त अनुचित है।

सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करना बहुत ही बुरा है। क्योंकि इस से मनुष्य बच्चों के पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि के चिन्ता-भार से मुक्त हो जाता है। अपनी गलती के दण्ड से वह कायरता-पूर्वक जी चुराता है। यह सरासर अनुचित और बुरा है। स्त्री पुरुषो के सम्बन्ध मे यदि कोई समाधान के योग्य बात हो तो वह केवल यही संतानोत्पत्ति है। मानव विवेक के लिए यह अत्यंत जघन्य बात है। क्योंकि गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के काल मे विषयोपभोग करने से स्त्री के शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियो का पूर्ण विनाश हो जाता है।

अतः इस दृष्टि से विचार करते हुए भी हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि यह बुराई हमारे अदर से जितनी जल्द हो सके दूर करना चाहिए। इसको यदि दूर करना है तो मनुष्य को चाहिए कि वह संयम के महत्त्व को समझ ले। जो संयम अविवाहित अवस्था मे मानव गौरव की अनिवार्य शर्त है, वह विवाहित जीवन मे पहले से भी अधिक आवश्यक है।

यह हुई तीसरी बात

चौथे जिस समाज मे बच्चो का पैदा होना विषयानन्द मे एक

विघ्न, एक अभागा संयोग अथवा नियमित संख्या में ही हो तो, सुख का विषय, समझा जाता है, उसमें इनका पालन-पोषण, तथा संवर्धन इस खयाल से नहीं किया जाता कि वे बड़े होने पर उन प्रश्नो को सुलझावें जो कि उन्हे विवेकशील, प्रेमी जीव समझ कर, उनकी राह देख रहे हैं, बल्कि माता-पिता उनका पालन इस खयाल से करते है कि वे उनको सुख दें। फलत. मनुष्यो के बच्चे पशुओ के बच्चो की तरह पालेपोसे जाते हैं। उनका पालन-पोषण करते समय माता पिता यह कोशिश नही करते कि हमारे बच्चे बड़े होने पर मानवता के उलझे हुए प्रश्नो को सुलझाने योग्य बनें। बल्कि वे तो उन्हे मोटा, ताजा, सुन्दर-सुडौल बनाने के लिए खिलाते पिलाते है। और एक झूठा शास्त्र—वैद्यक—इनका समथन करता है। यदि निचले दर्जे के लोग यह नहीं करते तो इसका कारण कोई उच्च आदर्श नही, बल्कि उनकी दरिद्रता है। चाहते तो वे भी यही हैं कि उनके बच्चे भी धनिको के बच्चो के जैसेही सुन्दर-सुडौल और मोटे ताजे हो।

इन हद से ज्यादह खाने वाले बच्चो मे, अन्य तमाम ज्यादह खाने वाले पशुओं के समान, एक बहुत अस्वाभाविक कम उम्र में दुर्दमनीय वैषयिकता उत्पन्न हो जाती है जो बड़े होने पर उन्हे बेतरह सताती है। उनकी इस वैषयिकता को उनके वायुमण्डल से भी असाधारण पोषण और उत्तेजना मिलती है। कपड़े, किताबे, दृश्य, संगीत, नृत्य, मेले और संदूको पर की तस्वीरो से लेकर कथा कहानियाँ और कविताएँ तक जीवन की तमाम अनान्य आवश्यक चीजें उनकी कामुकता को बेहद बढ़ाती चली जाती हैं।

फल यह होता है कि समाज के युवक, युवतियाँ जीवन के वसंतकाल ही से भीषण रोग के शिकार होने लग जाती हैं।

यह अत्यन्त दुःख की बात है।

इससे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये ? यही कि, मनुष्यों के बच्चो का पालन-पोषण पशु के बच्चो की तरह करना हानिकर है। शिशु-संवर्धन के समय बच्चे के मोटे ताजे और सुडौल बनाने की अपेक्षा दूसरी बातो की ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिये।

यह हुई चौथी बात

पाँचवे हमारे समाज मे युवक और युवतियो का आपस में प्रेम करना मानव-जीवन की सर्वोच्च काव्यमय महत्वाकांक्षा समझी जाती है। (जरा हमारे समाज की कला और काव्य की ओर दृष्टिपात करके देख लीजिए) युवक स्वतंत्र प्रेम-विवाह के लिए किसी योग्य युवती को ढूँढ़ने मे और लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ ऐसे पुरुषो को अपने प्रेम-पाशो मे फँसाने मे अपने जीवन का बढ़िया से बढ़िया हिस्सा योंही बरबाद कर देते हैं।

इस देश के पुरुषों की सर्वश्रेष्ठ शक्तियाँ ऐसे काम मे खर्च हो जाती हैं जो न केवल निरर्थक बल्कि हानिकर भी हैं। इसी के कारण हमारे जीवन मे इतनी मूढ़ विलासिता बढ़ती जा रही है। इसी के कारण पुरुषो मे आलस्य और स्त्रियो में निर्बलता बढ़ती जाती है। कुलीन स्त्रियाँ नीच कुलटाओ की देखादेखी नित्य नई फैशने सीखती जाती हैं और पुरुषो के चित्त में काम की आग को भड़काने वाले अपने अंगों का प्रदर्शन करने मे जरा भी नहीं लजाती।

क्या यह पतन का सीधा मार्ग नही है ?

काव्य और अद्भुत कथाओ में भले ही स्त्री-पुरुषो के इस सम्बन्ध को आनन्द के सर्वोच्च शिखर पर बैठा दिया हो, किन्तु यथार्थ मे देखा जाय तो अपने प्रेमपात्र के साथ ऐसा सम्मिलन उतना ही अनुचित है जितना कि अच्छे अच्छे पकवानो का खूब खा लेना सिर्फ इसीलिए कि कुछ लोगो की नज़र में वे एक नियामत हैं ।

मनुष्य को चाहिए कि वह विषयोपभोग को एक उच्च आनन्द देनेवाली वस्तु समझना छोड़ दे । जरा सोचिए तो सही, विषयोपभोग के कारण मनुष्य को किस पुरुषार्थ की प्राप्ति में सहायता मिलती है ? विषयी मनुष्य कला, शास्त्र, . देश अथवा समस्त मनुष्य-जाति इनमें से किसी एक की भी सेवा करने योग्य नही रह जाता । वह प्रेम अथवा विषय-वासना मनुष्य के कार्य मे कभी सहायता नही पहुँचाती बल्कि, हाँ, उलटे विघ्न ज़रूर उपस्थित कर देती है। काव्य और उपन्यास भले ही उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधें और इसके विपरीत सिद्ध करने की कोशिश करे ।

यह हुई पाँचवी बात

मैं जो कुछ कहना चाहता था, वह संक्षेप मे यही है । जहाँ तक मै सोचता हूँ अपनी 'सोनाटा फूजा' नामक कहानी मे मैंने यह दर्शा भी दिया है । उपर्युक्त विवेचन द्वारा जो बुराई बताई गई है, उसके दूर करने के उपायो मे भले ही मतभेद हो सकता हो परन्तु मेरा ख़याल है कि इन विचारो की सत्यता के विषय मे तो शायद कोई असहमत न होगा ।

और असहमत कोई हो भी क्यो ? उसकी बात तो यह है कि इस बात को सभी मानते हैं कि मनुष्य-जाति नैतिक शिथिलता से पवित्रता की ओर धीरे धीरे प्रगति करती जा रही है और उपर्युक्त विचार इसके अनुकूल है। दूसरे यह समाज और व्यक्ति दोनो के नीति-विवेक के अनुकूल भी है। दोनो वैपयिकता की निन्दा और संयम की तारीफ़ करते हैं। फिर ये बाइबल की शिक्षा के भी अनुकूल है, जो हमारे नैतिक विचारो की बुनियाद में हैं और जिसकी हम डींग मारते है। पर बाद मे मेरा यह ख़याल ग़लत साबित हुआ।

पर यह तो सत्य है कि प्रत्यक्ष रूप से इन विचारो की सत्यता मे कोई शक नहीं करता कि विवाह के पहले या बाद मे विपयोपभोग अनावश्यक है—कृत्रिम उपायों से संतति का निरोध नहीं करना चाहिए और स्त्री-पुरुपो को अन्य कार्यों की अपेक्षा विपयोपभोग को अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझना चाहिए। अथवा एक शब्द मे कहें, तो विपयोपभोग की अपेक्षा सयम—ब्रह्मचर्य—कहीं अधिक श्रेष्ठ है। पर लोग पूछते है, यदि ब्रह्मचर्य विपयोपभोग की अपेक्षा श्रेष्ठ है तो यह स्पष्ट है कि मनुष्य को श्रेष्ठ मार्ग ही का अवलम्बन करना चाहिए। पर यदि वे ऐसा करें तो मनुष्य जाति न नष्ट हो जायगी ?"

किन्तु पृथ्वीतल से मनुष्य-जाति के मिट जाने का डर कोई नवीन बात नहीं है। धार्मिक लोग इस पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं और वैज्ञानिको के लिए सूर्य के ठंढे होने के बाद यह एक अनिवार्य बात है। पर हम इस विषय मे यहाँ कुछ न कहेगे।

इस दलील मे एक विशाल और पुरानी ग़लत-फ़हमी है। लोग कहते है कि यदि मनुष्य ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहने लग जायँ तो पृथ्वी तक से मनुष्य-जाति ही उठ जायगी, अतः यह आदर्श ही गलत है। पर इस तरह की दलील को पेश करने वालो के दिमाग मे नियम और आदर्श की कल्पनाओ में कुछ गड़बड़ी है।

ब्रह्मचर्य उपदेश अथवा नियम नहीं। आदर्श अथवा आदर्श की शर्तों मे से एक है। आदर्श तो तभी आदर्श कहा जा सकता है जब उसकी प्राप्ति कल्पना द्वारा ही सम्भव हो, जब उसकी प्राप्ति अनन्त की 'आड़' में छिपी हो। यदि आदर्श प्राप्त हो जाय अथवा हम उसकी प्राप्ति की कल्पना भी कर सकें तो वह आदर्श ही नही रहा।

पृथ्वी पर परमात्मा के राज्य की अर्थात् स्वर्ग की स्थापना करने का ईसा का आदर्श इसी कोटि का था और पुराने पैग़म्बरों ने इसका पहले ही भविष्य कथन कर दिया था, जब उन्होंने कहा था कि वह समय आ रहा है, जब प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर-विषयक ज्ञान दिया जायगा। वह समय तेज़ी से आ रहा है, जब लोगों को अपनी तलवारें तोड़ कर उनके हल और अपने भालो की क़लम करने की कैंचियाँ बना लेनी पड़ेगी; जब शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीयेंगे और समस्त प्राणिमात्र एकमात्र प्रेम के बंधन मे बंध जायेंगे। मानव जीवन का अंतिम आदर्श यही है। अत. इस उच्च आदर्श की पूर्णता की तरफ़ हमारा कदम बढ़ना खतरनाक बात नहीं है। ब्रह्मचर्य्य तो उस आदर्श का एक अंग ही है। इस से जीवन के विनाश

का संभव नही, वल्कि इस के विपरीत बात तो यही ठीक है कि इस आदर्श का अभाव ही हमारी प्रगति के लिए हानिकर और इसी कारण जीवन के लिए ख़तरनाक है।

प्रेम-धर्म का पालन करने के लिए यदि जी जान से मनुष्य यत्न करे—जीवन-कलह को छोड़ कर यदि हम भूतमात्र के प्रति प्रेम-धर्म के आदेश के अनुसार रहने लग जायँ तो क्या मनुष्य-जाति नष्ट हो जायगी ? प्रेम-धर्म के पालन से मनुष्य-जाति के विनाश का संदेह करने के समान ही, ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य जाति का विनाश होने की शंका करना है। ऐसी शकाये उन्ही लोगो के चित्त में पैदा होती हैं जो उन दो उपायो के वीच का भेद नहीं समझ पाते हैं जो कि नीति के मार्ग-दर्शक हैं।

जिस प्रकार पथिक को रास्ता वताने के दो मार्ग होते हैं, उसी प्रकार सत्य का शोध करने वाले के लिए भी नैतिक जीवन के मार्ग-दर्शक केवल दो ही उपाय हैं। एक उपाय के द्वारा पथिक को उसके रास्ते मे मिलने वाले चिह्नो और निशानो की सूचना दी जाती है जिनको देख कर वह अपना रास्ता ढूँढ़ता चला जाय। और दूसरे के द्वारा उसको अपने पास वाले दिशा-दर्शक कम्पास की भाषा में रास्ता समझाया जाता है।

नैतिक मार्ग-दर्शक पहले उपाय के अनुसार मनुष्य को वाहरी नियम वताते हैं। उसे क्या करना चाहिये और क्या नही, इसका साधारण ज्ञान दिया जाता है—मसलन् सत्य का पालन कर, चोरी मत कर, किसी प्राणी की हत्या न कर, मोहताजो को दान दिया कर, शरीर को साफ़ सुथरा रख कर ईश्वर-प्रार्थना करता

जा, शराब कभी न पी इत्यादि। धर्म के ये बाहरी सिद्धान्त अथवा नियम हैं। और किसी न किसी रूप में ये प्रत्येक धर्म मे पाये जाते हैं। फिर वह सनातन वैदिक धर्म हो, बुद्ध धर्म हो, यहूदी धर्म हो वा पादड़ियो का धर्म हो (जो ख्वाहमख्वा ईसाई मज़हब कहा जाता है।)

मनुष्य को नीति की ओर ले जाने का एक दूसरा उपाय है जो उस पूर्णता की ओर इशारा करता है, जिसे आदमी कभी प्राप्त हा नही कर सकता। हॉ, उसके 'हृदय मे यह आकांक्षा ज़रूर रहती है कि वह इस पूर्णता को प्राप्त करे। एक आदर्श बताया जाता है, उसको देख कर मनुष्य अपनी कमज़ोरी या अपूर्णता का अन्दाज़ लगा सकता है और उसे दूर करने का प्रयत्न करता रहता है।

"काया, वाचा, मनसा ईश्वर की भक्ति कर और अपने पड़ोसी पर अपने निज के समान प्यार कर"।

"अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन"। यह है ईसा का उपदेश।

बाह्य नियमो के पालन के मानी हैं आचार और उपदेश मे सम्पूर्ण साम्य और यह असम्भव नही।

आदर्श-पूर्णता से हम कितने दूर है, इसका ठीक ठीक ज्ञान-हो जाने के ही माने है कि हम ईसा के उपदेशो का पालन कहाँ तक कर रहे हैं। (मनुष्य यह नही देख सकता कि इस आदर्श के कितने नजदीक तक मै पहुँचा हूँ। पर वह यह ज़रूर देख सकता है कि मै उससे कितनी दूर हूँ।)

बाह्य नियमो का जो मनुष्य पालन करता है, वह उस मनुष्य के समान है जो खम्भे पर लगे हुए लालटेन के प्रकाश मे खड़ा हो। वह प्रकाश मे खड़ा है। प्रकाश उसके चारो ओर है पर उसके आगे बढ़ने के लिए कोई मार्ग नही है। ईसा के उपदेशो पर जिसका विश्वास है, वह उस मनुष्य के समान है जिसके आगे आगे लालटेन चलता है। प्रकाश हमेशा उससे आगे ही रहता है और उसे बराबर अपना अनुसरण करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा करता रहता है। वह बराबर नये नये पदार्थों को प्रकाशित कर उनकी ओर मनुष्य को आकर्पित करता रहता है।

फारिसी इसलिए परमात्मा को धन्यवाद देता है कि वह उस कानून का पूर्ण पालन करता है। उस धनिक युवक ने भी अपने बचपन से सम्पूर्ण नियमों का पालन किया था किन्तु वह यह नहीं जानता कि उसके अन्दर क्या कमी है। यह स्वाभाविक भी है। उनके सामने ऐसी कोई चीज़ न थी, जो उनको आगे बढ़ने की प्रेरणा करे। दान दिये जाते, सबाथ का पालन होता, माता पिता का सम्मान किया जाता। व्यभिचार, चोरी और खून से दूर रहते थे, और क्या चाहिए।

पर जो ईसाई आदर्श मे विश्वास करता है, उसकी बात दूसरी है। एक सीढ़ी पर चढ़ते ही दूसरी पर पैर रखने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है, दूसरी पर पहुँचते ही तीसरी सीढ़ी दीखने लग जाती है। इस तरह वह आगे ही आगे बढ़ता जाता है। उसके प्रगति का क्रम अनंत है।

ईसा के आदेशो मे विश्वास करने वाला सदा अपनी अपूर्णता

को देखता रहता है। पीछे की ओर मुड़ कर वह यह नही देखता कि मै कितनी दूर आया। बस, वह तो यही देखता रहता है कि मुझे और कितनी दूर जाना है।

ईसा के उपदेशो मे यही विशेषता है जो अन्य धर्म-मार्गों मे नही पाई जाती। भेद, दावो का नही; बल्कि प्रेरक रीति का है।

ईसा ने जीवन की कोई परिभाषा नही बताई। उसने विवाह वा अन्य किसी प्रकार की—किसी संस्था की—स्थापना नही की। पर मनुष्यो ने उसके उपदेशो की विशेषताओ को नही देखा। केवल बाहरी नियमो के पालन मे अटके रह गये। फारिसियो की भॉति वे यह समाधान ढूँढ़ने लगे कि हम उसके तमाम आदेशो का पालन करते हैं। इस धुन में वे ईसा के सच्चे आशय का दर्शन न कर पाये। उसके शब्दो के अनुसार, किन्तु उसके उपदेशो के ठीक विपरीत, उन्होने नियमो का एक तांता बना लिया जिसे वे गिरजा के सिद्धान्त (Church doctrines) कहने लगे। इन नियमो ने ईसा के सच्चे सिद्धान्तों को अलग हटा कर अपना ही सिक्का जमा लिया।

ईसा के आदर्श उपदेशों के स्थान पर और उसके उद्देश के विपरीत इन गिरजा सिद्धान्तो ने, जो अपने को ख्वाहमख्वाह ईसाई कहते है, जीवन के तमाम प्रसङ्गो पर अपने नियमोपनियम बना लिये। सरकार, कानून, गिरजाघर, और पूजा के सम्बन्ध मे ये नियम बनाये गये है। विवाह-विषयक भी कुछ नियम हैं। ईसा ने कभी विवाह-संस्था की स्थापना नही की। बल्कि वह तो इसके खिलाफ़ भी था। (अपनी पत्नी को छोड़ कर मेरी बात

मान) पर इसकी कुछ भी परवा न कर अपने को ख्वाहमख्वाह ईसाई कहने वाले गिरजा-सिद्धान्तो ने विवाह को एक वारगी ईसाई संस्था करार दे दिया अर्थात् उन्होंने उन बाह्य नियमो की रचना कर डाली जिनके अनुसार एक ईसाई के लिए वैषयिक-प्रेम जैसा कि वे प्रतिपादन करते हैं, पूर्णतया पापरहित और जायज्ञ संस्कार हो जाता है।

यद्यपि स्वयं ईसा के उपदेशो के अनुसार विवाह एक ईसाई संस्था नही है, तथापि अब बात यह हो गई है कि परली पार पहुँचने के उपाय की आयोजना सोचने के पहिले ही मनुष्य इस किनारे को छोड़ चुके हैं। बात यह है कि विवाह विषयक इस पादरीशाही परिभाषा मे वे विश्वास नही करते। वे जानते हैं कि ईसाई सिद्धान्तो मे इसे कही स्थान ही नही है। दूसरे वे ईसा के पूर्ण ब्रह्मचर्य-विषयक आदर्श का भी दर्शन नही कर पाये हैं। भला, इस विवाह के सम्बन्ध मे उन्हे कोई निश्चित मार्ग ही नही दिखाई देता।

यहूदी, इस्लामी, लामा पंथी आदि लोगो मे, जो कि ईसाई-धर्म की अपेक्षा कही निकृष्ट धर्म-सिद्धान्तो को मानते हैं और जिनमे विवाह-विषयक बाह्य नियम वर्तमान है, पारिवारिक और वैवाहिक निष्ठा ईसाई कहे जाने वालों की अपेक्षा कही अधिक मजबूत है। इन लोगो मे दाश्तायें रक्खी जाती हैं, एक पुरुष की कई पत्नियाँ होती हैं, एक स्त्री के कई पति होते है, यह सब होता है। पर इसकी भी उनमे सीमा है। किन्तु हम लोगों मे (ईसा-इयो मे) अधमता की कोई हद ही नही। दाश्तायें रक्खी जाता

है, वह पत्नीत्व है, वह पतीत्व है, और वह असीम है। और सब से भारी आश्चर्य यह कि एक पतीत्व अथवा एक पत्नीत्व की ओट मे सब हो रहा है।

इसका कारण यही है कि ये पादड़ी लोग केवल धन के लिए उन जुड़े हुए लोगों पर एक ऐसा सस्कार करते हैं जिसको पादड़ी शाही विवाह कहा जाता है। इसलिए कि लोग अपने को धोखा देकर यह ख़याल करने लग जायँ कि वे लोग एक पत्नीव्रत या एक पतिव्रत का पालन कर रहे हैं।

न तो आज तक कभी ईसाई विवाह हुआ है और न कभी हो ही सकता है। *ईसाई पूजा, गिरजा के ईसाई शिक्षक या ईसाई पिता, ईसाई जायदाद, ईसाई फौज, ईसाई अदालतें और ईसाई सरकारो का अस्तित्व जिस प्रकार एक असभव और अनहोनी बात है, ठीक उसी प्रकार ईसाई विवाह भी एकदम असंभव वस्तु †है।

ईसा के बाद की कुछ सदियो मे होने वाले ईसाइयो ने इस रहस्य को भलि भॉति जान लिया था।

ईसाई आदर्श तो यह है—ईश्वर और अपने पड़ोसी पर प्यार करो। ईश्वर और अपने पड़ोसी की सेवा के लिए अपना सर्वस्व त्याग दो। वैपयिक प्रेम और विवाह तो आत्म-सेवा—स्वयं अपनी सेवा—है। इसलिए हर हालत मे वह ईश्वर और मनुष्य की सेवा के आदर्श का विरोधी है। अतः ईसाई दृष्टि से वह पतन है, पाप है।

---

* मैथ्यू ४, ५-१२, जॉन ४, २१

† मैथ्यू २२, ८-१०,

विवाह से मनुष्य अथवा ईश्वर की सेवा मे कोई सहायता नही पहुँचती यद्यपि विवाह की इच्छा करने वालों का हेतु इससे मानव-समाज की सेवा करना भी हो। विवाह करके नये बच्चो को पैदा करने की अपेक्षा उनके लिए यह कहीं अधिक आसान है कि वे भूखो मरने वाले उन लाखो मनुष्यो को किसी उपयोगी उद्यम में लगा कर बचावें। आध्यात्मिक अन्न की तो बात दूर है पर उनके शारीरिक पोषण के लिये ही अन्न प्राप्त करने मे उनकी सहायता करे।

एक सच्चा ईसाई तो विवाह को बिना किसी प्रकार का पाप समझे तभी वैवाहिक बंधन मे अपने को बाँध सकता है, जब कि वह यह देख ले कि अभी संसार मे जितने भी बच्चे हैं, सब को भर पेट अन्न मिल रहा है।

मनुष्य ईसा के उपदेशो को मानने से भले ही इन्कार करें, हाँ, भले ही मनुष्य उन सिद्धान्तों को न माने जो हमारे जीवन की तह तक पहुँच गये है, और जिन पर हमारी तमाम नीति निर्भर है। पर यदि एक बार अंगीकार कर ले तो इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि वे हमे सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर ले जा रहे हैं।

बायबल मे यह साफ़ साफ़ शब्दो मे कहा है जिनका ग़लत अर्थ ही नहीं किया जा सकता कि पहले तो मनुष्य को दूसरी पत्नी करने के लिए अपनी पहली पत्नी को नहीं छोड़ना चाहिए*

* मैथ्यू अध्याय पाँचवाँ वचन २८, २९, ३१, ३२ और अध्याय उन्नीस के वचन ८, १०, १२

दूसरे, पुरुष के लिए सर्वसाधारणतया, अर्थात् वह विवाहित हो या अविवाहित, यह पाप है कि वह स्त्री को अपनी भोग—सामग्री समझे। तीसरे, अविवाहित मनुष्य के लिए अच्छा यही है कि वह कभी शादी न करे अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करे।

कई लोगो को ये विचार विचित्र और विपरीत मालूम होगे और सचमुच ये विपरीत है भी। किन्तु अपने ही प्रति नहीं, वे हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के एकदम विपरीत है। तब अपने आप एक सवाल खड़ा होता है कि फिर सत्य क्या है? ये विचार, या हम लाखो करोड़ो का और मेरा भी प्रत्यक्ष-जीवन? यह विचार और भाव उस समय मेरे दिल मे बड़े जोरो से उठ रहे थे जब मै धीरे धीरे इन निर्णयों की ओर आकर्षित हो रहा था। मैंने यह कभी खयाल भी न किया था कि मेरे विचार मुझे उन नतीजो पर ले जावेगे जिन पर कि मै आज आ पहुँचा हूँ। इन नतीजो ने तो मुझे चौका दिया। मै इन पर विश्वास भी करना नहीं चाहता था। पर यह असंभव था। हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के वे चाहे कितने ही विपरीत हो, स्वयं मेरे पूर्व जीवन और लेखों से भी वे चाहे बहुत विपरीत हो, परन्तु मै तो उन पर विश्वास करने के लिए मजबूर हो गया हूँ।

लोग कहेगे, ये तो सिद्धान्त की बातें हैं। यद्यपि वे सच्ची हों तथापि है वे आखिर ईसा के उपदेश। वे उन्ही लोगो पर लागू हो सकते है जो कहते है कि हम उनमे विश्वास करते हैं। पर जीवन कोई खेल नही है। यह तो आप पहले ही कह चुके हैं कि ईसा का बताया यह आदर्श अप्राप्य है। फिर भी हम केवल इसी

हवाई आदर्श के भरोसे संसार में लोगो को, एक ऐसे वादग्रस्त प्रश्न के बीच धार मे नहीं छोड़ सकते जो कि उन्हे बड़े बड़े संकटो की ओर ले जा सकती है।

एक जवान भावुक आदमी इस आदर्श के द्वारा पहले भले ही आकर्पित हो जाय, पर वह आखिर तक नहीं टिक सकता। उसका पतन अवश्यम्भावी है। फिर वह किसी नियम और उपदेश की परवा नहीं करेगा। बस, सीधा नीचे की ओर दौड़ता चला जायगा।

ईसा का आदर्श तो दुष्प्राप्य है। दूर से देखने की चीज़ है। हम उस तक नहीं पहुँच सकते। वह ससार में हमारा हाथ पकड़ कर नहीं ले जा सकता। भले ही हम उसके विपय मे खूब लम्बी चौड़ी बाते करे, अजीव अजीव स्वप्न देखे, पर यह प्रत्यक्ष जीवन के लिये एकदम निरुपयोगी है अतएव छोड़ देने योग्य है।

हमें आदर्श की नहीं, मार्गदर्शक की आवश्यकता है जो हमारी शक्ति का ख़याल कर हमे धीरे धीरे आगे बढ़ाता हुआ ले चले, जो हमारे समाज की सर्वसाधारण नैतिक अवस्था के अनुकूल हो।

यदि ऐसा है तो पादड़ीशाही विवाह, या अप्रामाणिक विवाह जिसमे दोनों में से किसी एक का (हमारे समाज मे सामान्यतः पुरुप का) दूसरी औरतो के साथ सम्बन्ध रह चुका हो, सिविल विवाह, अथवा वह विवाह जिसमे तिलाक़ की गुंजाइश हो, या नियतकाल की सीमा रखने वाला जापानी विवाह या इससे भी आगे बढ़ कर नित्य नूतन विवाह ही क्यो न किया जाय, जो कि कुछ

लोगों के ख़याल मे खुल्लमखुल्ला रास्ते पर होने वाली अनीति से तो किसी प्रकार अच्छा है।

दिक्कत यही है कि अपनी कमजोरी से मेल बैठाने के लिए आदर्श को ढीला करते ही यह नहीं सूझ पड़ता कि कहाँ ठहरा जाय।

पर यह दलील शुरू से गलत है। पहले तो यही ख़याल गलत है कि अनत पूर्णता वाला आदर्श, जीवन मे हमारा मार्ग-दर्शक नहीं हो सकता। दूसरे यह सोचना भी लगत है कि या तो मुझे निराश हो यह कह देना चाहिए कि आदर्श हद से ज्यादह ऊँचा है, इसलिए इसे मुझे छोड़ देना चाहिए या मुझे उस आदर्श को अपनी कमजोरी से मेल बैठाने के लिए नीचे खसकाना चाहिए क्योंकि अपनी कमजोरी के कारण मैं जहाँ का वहीं रहना चाहता हूँ।

यदि एक जहाज का कप्तान कहे कि मै कम्पास द्वारा बताई जानेवाली दिशा मे नही जा सकता इसलिये मै उसे उठाकर समुद्र मे डाल दूँगा, उसकी तरफ़ देखना ही बन्द कर दूँगा। (अर्थात् आदर्श को कतई छोड़ दूँगा) या मै कम्पास के सुई को पकड़ कर उस दिशा मे बाँध दूँगा जिधर मेरा जहाज जा रहा है (अर्थात् अपनी कमजोरी तक आदर्श को नीचे खींच लूँगा) तो निःसन्देह बेवक़ूफ़ कहा जायगा।

ईसा का बताया आदर्श न तो एक स्वप्न है और न कोई काव्यमय उपदेश। वह तो मनुष्यो को नीतिमय जीवन की ओर ले जानेवाला एक नितान्त आवश्यक मार्ग-दर्शक है जो सब के लिए एकसा उपयोगी और प्राप्य है, जैसा कि नाविको के लिए

वह कम्पास होता है। पर नाविक का अपने कम्पास अर्थात् दिशा दर्शक यंत्र मे विश्वास करना जितना आवश्यक है उतना ही मनुष्य का इन उपदेशो में विश्वास करना भी है।

मनुष्य चाहे किसी परिस्थिति मे क्यो न हो, ईसा के आदर्श का उपदेश उसे यह निश्चित रूप से वताने के लिए सदा उपयोगी होगा कि उस मनुष्य को क्या क्या वाते करनी चाहिए। पर उसे उस उपदेश मे पूरा विश्वास, अनन्य श्रद्धा, हो। जिस प्रकार जहाज का मल्लाह या कप्तान उस कम्पास को छोड़ और दाये वाये आने वाली किसी चीज का ख़याल नही करता, उसी प्रकार मनुष्य को भी इन उपदेशो मे पूरी श्रद्धा रखनी चाहिए।

मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि ईसा के उपदेशों के अनुसार हमें किस तरह चलना चाहिए और इसके लिए अपनी वर्त्तमान अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लेना परम आवश्यक है। उपस्थित आदर्श से हम कितनी दूर हैं, यह जानने से मनुष्य को कभी डरना न चाहिए। मनुष्य कहीं भी और किसी भी हालत में हो, वहाँ से वह वरावर आदर्श की तरफ़ वढ़ सकता है। साथ ही वह कितना ही आगे क्यो न वढ़ जाय, वह कभी यह नहीं कह सकता कि अव मै ठेठ तक पहुँच गया या अव आगे वढ़ने के लिए कोई मार्ग ही न रहा।

सर्वसाधारणतया ईसाई आदर्श के प्रति और ख़ास कर ब्रह्मचर्य के प्रति मनुष्य की यह वृत्ति होनी चाहिए। एक अत्यन्त निर्दोष वालक से लेकर असंयमी और पतित से पतित विवाहित जीवन वाले मनुष्य की कल्पना कीजिए। और आप देखेंगे कि

इन दोनो और दो मे से बीच की प्रत्येक सीढ़ी पर खड़े हुए आदमी के लिए ईसाई आदर्श ठीक ठीक और निश्चित मार्ग का बतानेवाला सिद्ध होगा।

"एक पवित्र लड़के या लड़की को क्या करना चाहिए ?" अपने को पवित्र और प्रलोभनो से दूर रखना चाहिए। और ईश्वर और मनुष्य की सेवा पूर्णतया करने के योग्य बनने के लिए उन्हे चाहिए कि वे अधिकाधिक पवित्र बनने की कोशिश करे, मानसिक पवित्रता को भी प्राप्त करने की कोशिश करे।

"वह युवक या युवती क्या करे, जो प्रलोभनो के शिकार बन चुके हैं, जो या तो निरुद्देश प्रेम के चक्र मे पडे है या किसी ख़ास व्यक्ति के प्रेम-पाश मे बँध कर एक हद तक ईश्वर और मानव-सेवा के आदर्श का पालन करने के अयोग्य हो गये है ?"

वे भी वही करे, जो शुद्ध हृदय के युवक युवतियो के लिए कहा गया है। वे अपने को पाप मे पड़ने से बचावें। पतन उन को प्रलोभन से छुड़ा नही सकता बल्कि वह तो उन्हे प्रलोभनो मे और भी जकड़ देगा। उन्हे तो अधिकाधिक पवित्रता की प्राप्ति और रक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वे ईश्वर और मनुष्य की सेवा के अधिक योग्य बने।

वे क्या करे, जिन्होने प्रलोभनो का प्रतिकार नही किया और गिर गये है ?

उनके पतन को जायज, आनन्दमय मत समझिए, (जैसा कि विवाह-संस्कार के बाद आजकल समझा जाता है) न उसे एक नैमित्तिक सुख समझिए जिसका उपभोग बार बार किया

जा सकता हो ।-पतन के वाद और किसी नीचे के दर्जे के व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होने पर उसे एक विपत्ति भी न समझो। वल्कि इस पहले पतन को एकमात्र पतन एवं अटूट और सच्चा विवाह-बंधन ही समझिए ।

यह विवाह-बंधन, जिसका फल संतानोत्पत्ति होता है, उन व्यक्तियो को ईश्वर और मनुष्य की सेवा के अधिक परिमित क्षेत्र के वन्धन मे वॉध देता है। विवाह के पहले वे मनुष्य और ईश्वर की सेवा स्वयं प्रत्यक्ष रूप से और कई प्रकार से कर सकते थे। विवाह-बधन उनके कार्यों के क्षेत्र को सीमित कर देता है और उन्हे आदेश करता है कि वे अपने वच्चो के—ईश्वर और मनुष्य के भावी सेवको के—संवर्धन-शिक्षा का अच्छाप्रवध करे ।

वे विवाहित स्त्री पुरुप, जो अपने वच्चो का सवर्धन और शिक्षा का काम निवाह करके, अपने परिमित क्षेत्र के कर्त्तव्यो का पालन कर रहे हैं, क्या करे ?

वही, जो मैं पहिले कह चुका हूँ। दोनो मिलकर अपने आपको प्रलोभनो से वचावें। ईश्वर और मनुष्य की सर्वसाधारण और खास सेवा मे रुकावटे डालने वाले पाप से वचावे और अपने को शुद्ध करें। वैपयिक प्रेम को शुद्ध—भाई वहन के—प्रेम मे परिणित कर दें ।

इसलिये यह सत्य नहीं कि ईसा के आदर्श के ऊँचे, पूर्ण और दुरुह होने के कारण हमे अपने मार्ग मे आगे वढ़ने मे कोई सहायता नहीं मिलती। हमें उससे प्रेरणा और स्फूर्ति इसलिए नहीं मिलती कि हम अपने प्रति असत्य आचरण करके अपने आपको

धोखा देते हैं। हम अपने आपको समझाते हैं कि हमारे लिए अधिक व्यवहार्य नियमों का होना जरूरी है क्योंकि ऐसा न होने पर हम अपने आदर्श से गिर कर पतित हो जावेंगे। इसके स्पष्ट मानी यह नहीं कि ईसा का आदर्श बहुत ऊँचा है, बल्कि हमारा मतलब यह है कि हम उसमे विश्वास ही नहीं करते और न उसके अनुसार अपने जीवन का नियमन करना ही चाहते हैं।

एक बार गिरने पर यदि हम यह कहे कि हमने जीवन को शिथिल कर दिया है तो उसके मानी तो यही है कि हमने इस बात को पहले से तय कर दिया है कि समाज मे हमसे निचली श्रेणी के व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होना पाप नहीं, एक दिल बहलाव का साधन—एक विकार-दर्शन मात्र है जिस पर हम विवाह की मुहर लगा देना नहीं चाहते। इसके विपरीत यदि हम यह समझ ले कि यह एक पाप है और इस का प्रक्षालन अटूट विवाह-बंधन और तदनुगत बच्चो के पालन-पोषण-सम्बन्धी कर्तव्यो की दीक्षा लेने से ही हो सकता है, तब वह पतन हमारे लिए विकार-वर्धक नहीं होगा।

फ़र्ज कीजिये कि एक किसान अनाज बोना सीखना चाहता है। एक खेत को बुरी तरह बोता है और उसे छोड़ देता है। दूसरे को, तीसरे को, चौथे को भी इसी तरह बो बो कर छोड़ देता है और अंत मे जो जमीन अच्छी बोई हुई है, उसी को अपनी कहने लग जाता है। सोचिये, वह कितना नुक़सान करेगा। वह कभी अच्छी तरह बोना काटना नहीं सीख सकता। केवल ब्रह्म-चर्य को ही आदर्श समझिए। इस आदर्श से जब कभी और

जिस किसी के साथ पतन हो, वस, उसी समय उस व्यक्ति के साथ विवाह कर उसे जीवन का साथी वना दिया जाय। तव यह आसानी से समझ मे आजायगा कि ईसा केवल मार्ग-दर्शक ही नही वल्कि एक-मात्र मार्ग-दर्शक है।

लोग कहते हैं, मनुष्य स्वभावतः अपूर्ण है। उसे वही काम दिया जाय जो उसकी शक्ति के अनुसार हो। इसके तो मानी यही हुए कि मेरा हाथ कमजोर होने से मै सरल रेखा नहीं खींच सकता। इसलिये सरल रेखा खींचने के लिये मेरे सामने टेढ़ी या टूटी लकीर का ही नमूना रक्खा जाय।

पर वात यह है कि मेरा हाथ जितना ही कमजोर हो वस, उतना ही पूर्ण नमूना मेरे सामने होना आवश्यक है।

ईसा के उस पूर्ण अदर्श का ज्ञान प्राप्त करलेने पर हम अज्ञानी की भाँति काम करके वाहरी नियम नहीं वना सकते। ईसाई आदर्श के ज्ञान का उद्घाटन मनुष्य के लिये इसीलिये किया गया कि वह उसकी मौजूदा परिस्थिति मे उसके लिये मार्ग-दर्शक हो। मनुष्य जाति अव वाहरी धार्मिक नियमो के वन्धनो के परे चली गई है। अव उनमे कोई विश्वास नहीं कर सकता।

ईसा के उपदेश ही एक ऐसी चीज है जो मनुष्य को मार्ग दिखा सकते हैं। अतः इनके स्थान पर हमे अन्य वाहरी नियम न घडने चाहिए। हमे तो इसी आदर्श को अपने सामने रख कर उसमें श्रद्धा रखनी चाहिए।

किनारे के नजदीक से होकर चलनेवाले जहाज़ के लिए यह भले ही कहा जा सकता है कि उस सीधी ऊँची चट्टान के नज़दीक

से हो कर चलो, उस अन्तरीप के पास से, उस मीनार के बाँयें हो कर चले चलो। पर अब तो हमने ज़मीन को बहुत दूर पीछे छोड़ दिया। अब तो नक्षत्रों और दिशा दर्शक यंत्र की सहायता से ही हमें अपना रास्ता ढूँढ़ना होगा। और ये दोनों हमारे पास मौजूद हैं।

डायाना

'दी क्यूज़र सोनाटा' तथा अंतिम कथन* के विषय मे मुझे कई पत्र मिले हैं। इससे पता चलता है कि स्त्री और पुरुषो के पारस्परिक सम्बन्ध में सुधार करने की आवश्यकता को केवल मै ही नही, बल्कि कितने ही विचारशील स्त्री-पुरुष महसूस करते है। उनकी आवाज़ उन लोगो के शोरो गुल मे डूब जाती है जो इसके विपरीत विचार रखते हैं और वर्तमान अवस्था जिनके विकारों के अधिक अनुकूल है। इन पत्रो मे एक के साथ, जो मुझे गत ७ अक्टुबर १८९० ई० को मिला, एक छोटी सी पुस्तिका भी है जिसका नाम 'डायाना' है।

पत्र इस प्रकार है

हम लोग आप को 'डायाना' नामक एक छोटी सी पुस्तिका भेज रहे हैं। स्त्री-पुरुषो के सम्बन्ध पर यह एक ऐसा निबन्ध है जो मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान के आधार पर लिखा गया है। जबसे आपकी 'दी क्यूज़र सोनाटा' नामक कहानी अमेरिका मे प्रकाशित हुई है तब से कई लोग कहते हैं कि 'डायाना' उन सब सिद्धान्तो का खुलासा कर देती है जो टॉल्स्टॉय ने अपनी उपर्युक्त कहानी मे ग्रथित किये हैं। अतः

---

*टॉल्स्टॉय की एक कहानी और उस पर लिखे उनके अन्तिम कथन से यहाँ मतलब है।

हम यह पुस्तिका आपकी सेवा मे इसलिये भेज रहे हैं कि आप ही इस वात का स्वय निर्णय करे कि यह कथन कहाँ तक ठीक है। आपकी हार्दिक इच्छाओ की पूर्ति के लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करते है ।

भवदीय

(हस्ताक्षर) दी वर्नेस कम्पनी न्यूयार्क

इसके पहले मुझे फ्रान्स से श्रीमती एन्जाल फ्रेन्काइस का पत्र और उनकी एक पुस्तिका भी मिली थी। उन्होने अपने पत्र मे दो ऐसी संस्थाओ का जिक्र किया था जिनका उद्देश है स्त्री-पुरुषो के पारस्परिक सम्बन्ध को अधिक पवित्र रूप देना। इनमे से एक संस्था तो फ्रान्स मे और दूसरी इग्लैण्ड मे है। श्रीमती एन्जल फ्रेन्काइस के पत्र मे भी वही विचार ग्रथित किये गये हैं जो 'डायना' मे है, पर उतनी स्पष्टता के साथ नही। हॉ, उनमे कुछ परोक्ष ज्ञानवाद की ज्यादह झलक है।

'डायाना' मे जो कल्पनाये और विचार प्रकट किये गये हैं, उन का आधार ईसाई आदर्श पर स्थित नही है। मूर्ति याजक और प्लेटो के जीवन-सिद्धान्तो के आधार पर वह लिखी गई है। पर फिर भी उसके विचार इतने नवीन और आनन्द-वर्धक हैं और हमारे समाज के विवाहित तथा अविवाहित जीवन की वर्तमान नैतिक शिथिलता की जड़ मे जो अविवेक है, उसे इतनी अच्छी तरह प्रकट करते है कि उसे पाठको के सामने उपस्थित करने को मेरा जी चाहता है।

पुस्तिका पर यह आदर्श वाक्य लिखा है—"इन दोनों का शरीर एक होगा"। पुस्तिका मे ग्रथित विचारो का सार इस तरह है.—

स्त्री और पुरुषो मे केवल शारीरिक भेद ही नही है। अन्य बातों मे तथा उनके नैतिक गुणो मे भी भेद है जो पुरुषो मे पौरुष और स्त्रियो मे रमणीत्व कहे जाते है। शारीरिक सम्मीलन के लिये ही नही, वल्कि इन भिन्न भिन्न गुणो के भेद के कारण भी उनमे पारस्परिक आकर्षण होता रहता है। स्त्री पुरुष की तरफ झुकती है और पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है। प्रत्येक दूसरे की प्राप्ति द्वारा अपने को पूर्ण करने की कोशिश करता है। अतः यह आकर्पण शारीरिक तथा आध्यात्मिक सम्मीलन के लिए एकसा झुकाव रखता है। यह झुकाव एक ही शक्ति के दो अङ्ग हैं। और वे एक दूसरे के साथ ऐसा सम्बन्ध रखते है कि एक अग की तृप्ति से दूसरा अंग कमजोर हो जाता है। यदि आध्यात्मिक आकांक्षा की तृप्ति की ओर ध्यान दिया जाता है तो शारीरिक आकांक्षा कमजोर हो जाती है या विलकुल बुझ जाती है। और उसी प्रकार शारीरिक आकॉक्षा की पूर्ति आध्यात्मिक आकॉक्षा को कमजोर या नष्ट कर देती है। अत यह आकर्पण केवल शारीरिक ही नही होता। वह दोनो प्रकार का होता है—शारीरिक और आध्यात्मिक। हॉ, वह पूणतया एक देशीय भी वनाया जा सकता है। पूर्णतया पाशविक अथवा शारीरिक या आध्यात्मिक। इन दोनो के बीच कई सीढ़ियॉ है जिनमे भी उसका प्रादुर्भाव हो सकता है। पर स्त्री

पुरुषों को एक दूसरे की ओर बढ़ते समय किस सीढ़ी पर अपनी गति को रोक देना चाहिए ? यह तो उनके व्यक्तिगत विचारो पर निर्भर है। वे जिस सीढ़ी को उचित, अच्छी और वांछनीय समझें वहीं ठहर सकते है। यह संभव है या नहीं, इसका यदि निराकरण करना हो तो हमे छोटे रूस की उस रूढ़ी को देखना चाहिए जिसमे विवाह के लिए चुने हुए जवान लड़के लड़की बरसो तक साथ रक्खे जाते है और फिर भी वे अपने कौमार्य का भंग नही करते।

स्त्री और पुरुष प्रायः उसी सीढ़ी पर आनन्द मानते हैं जिसे वे अच्छी, उचित और वांछनीय समझते हैं। ये सीढ़ियाँ स्पष्ट ही प्रत्येक मनुष्य के लिए भिन्न भिन्न होगी। पर सवाल है यह कि क्या पारस्परिक सम्मीलन की कोई ऐसी एक सीढ़ी भी हो सकती है जिसको प्राप्त करने पर, सभी एक से और ज्यादह से ज्यादह सन्तोष को प्राप्त कर सके ?—चाहे शारीरिक सम्मीलन हो या आध्यात्मिक ? इसका उत्तर तो साफ और स्पष्ट है। पर वह हमारी सामाजिक धारणा के विपरीत है। उत्तर यह कि वह सीढ़ी शारीरिक अथवा इंद्रिय जन्य आनन्द के जितनी ही नजदीक होगी उतनी ही वासना बढ़ेगी और वासना जितनी ही अधिक बढ़ेगी हम सन्तोप से उतने ही दूर हटते जावेगे।

इसके विपरीत हम जितने ही अतीद्रिय (आध्यात्मिक) सुख की ओर बढ़ेंगे उतनी ही वासना नष्ट होगी और हमारा समाधान भी स्थायी होगा। वह सन्तोप होगा। इन्द्रिय-सुख

जीवन-शक्ति के लिए विनाशक है और अतीन्द्रिय सुख शान्ति, आनन्द और बल का बढ़ाने वाला है ।*

पुस्तक का लेखक स्त्री पुरुषों के सम्मीलन को मानव-जीवन के उच्च विश्वास की एक आवश्यक शर्त मानता है । लेखक का ख़याल है कि विवाह उन तमाम परिणत वय के स्त्री पुरुषों के लिए एक प्राकृतिक अवस्था है । यह कोई अनिवार्य नही कि उनका शारीरिक सम्बन्ध होना जरूरी है । पर वह सम्मीलन केवल आध्यात्मिक भी हो सकता है । विवाहेच्छु स्त्री पुरुषो की वृत्ति और प्रवृत्ति तथा योग्यायोग्यता के विवेक के अनुसार विवाह या तो शारीरिक या आध्यात्मिक सम्मीलन के नजदीक नज़दीक पहुँच सकता है । पर यह तो निःसन्देह समझिए कि वह सम्मिलन जितना ही अधिक आध्यात्मिक होगा उतना ही अधिक संतोष देने वाला होगा ।

लेखक इस बात को स्वीकार करते है कि स्त्री पुरुषो का पारस्परिक आकर्षण या तो पूर्णतया आध्यात्मिक ही हो सकता है या वैषयिक—शारीरिक। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि स्त्री पुरुष इसे अपनी इच्छानुसार आध्यात्मिक या वैषयिक क्षेत्र मे ले जाने की शक्ति भी रखते है । इससे स्पष्ट है कि वे ब्रह्मचर्य की असंभावना को कुबूल नही करते । बल्कि वे तो उसे विवाह के पहले और बाद मे स्त्री पुरुषो के स्वास्थ्य के ख़याल से अत्यंत आवश्यक भी मानते है ।

* सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम् । —गीता ।

लेख मे उदाहरणो की भरमार है जो उसकी मुख्य दलील को शरीर-शास्त्र के जननेन्द्रियो से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओ के प्रमाणो द्वारा मज़बूत करते है। वे उनके शारीरिक आघात प्रत्याघात का स्पष्ट रूप से वर्णन करते है। लेख में इस बात का भी खूब विचार किया गया है कि मनुष्य अपनी इन वैषयिक वृत्तियो पर प्रभुत्व प्रस्थापन कर, कहाँ तक उनको दूसरी धारा मे छोड़ सकता है? अपने विचारो की मज़बूती साबित करते हुए वे हरबर्ट स्पेन्सर के इन शब्दो को उद्धृत करते है कि "यदि एक नियम मनुष्य के लिए सचमुच कल्याणकर है, तो मनुष्य-स्वभाव अवश्यमेव उसके सामने अपना सिर झुका लेगा जिससे उसका पालन मनुष्य के लिए आनंददायक हो जायगा।" लेखक बाद मे कहते है कि इसलिए हमे वर्तमान प्रचलित रूढ़ियो पर इतना अवलंबित नही रहना चाहिए। हमे तो उस स्थिति का ख़याल करना चाहिए जिसे मनुष्य उज्ज्वल भविष्य मे प्राप्त करने जा रहा है।

लेखक अपने तमाम वक्तव्य को इस तरह सक्षेप मे प्रदर्शित करते है। 'डायाना' मे वर्णित सिद्धान्त थोड़े मे यह है कि स्त्री पुरुषो के बीच दो प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है। एक तो शुद्ध प्रेममय और दूसरा सन्तति के लिये। यदि सन्तति की इच्छा न हो तो यही अच्छा है कि वैषयिक प्रेम को शुद्ध सात्विक प्रेम मे परिणत कर दिया जाय। उपर्युक्त सिद्धान्तो पर जब विवेक-पूर्वक विचार किया जायगा, तब मनुष्य की वैषयिकता अपने आप कम हो जायगी। साथ ही यदि सयम के लिए पोषक आदते भी साथ साथ बनाना शुरू कर दिया जाय तो मनुष्य कई

दुःखो और कष्टो से बच जायगा और उसकी आकांक्षायें भी प्रशान्त हो जावेंगी।

पुस्तिका के अन्त मे एलिज़ा बर्न्स का, माता-पिता और शिक्षको के नाम, एक उत्कृष्ट पत्र दिया गया है। इस पत्र मे ऐसे प्रश्न पर विचार किया गया है जो ज़रा बे-परदा है। पर वह उन असंख्य युवक और युवतियो के लिए वास्तव मे बड़ा उपयोगी और कल्याणप्रद है जो नाना प्रकार के विकारो के पंजे मे पड़ कर अपने जीवन को बरबाद कर रहे हैं, जो अज्ञानवश अपनी उत्कृष्ट शक्तियो को प्रतिदिन व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं।

टाल्स्टाय के पत्र

(दिनचर्या आदि से)

विपयोपभोग के विषय में 'दी क्रूजर सोनाटा' के अंतिम कथन मे, मै अपने विचार पहले ही लिख चुका हूँ। वह तमाम प्रश्न एक शब्द मे यो कहा जा सकता है—ईसा और उसके वाद पॉल के उपदेश के अनुसार मनुष्य को हमेशा, हर परिस्थिति मे विवाहित तथा अविवाहित जीवन मे अपनी शक्ति भर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। स्त्री-विषयक ज्ञान से यदि वह अपने को बिल्कुल अछूता रख सके तव तो वह सर्वोत्कृष्ट वात होगी। यदि वह यह न कर सके तो यह कोशिश करे कि अपनी कमज़ोरी के अधीन कम से कम हो। विपयोपभोग मे कभी आनंद न ले। मेरा ख़याल है कि कोई सच्चा और गंभीर पुरुप इस प्रश्न को दूसरी तरह नहीं सोचेगा। सभी इस से सह-मत होंगे।

* * * *

'एडल्ट' के सम्पादक का 'स्वतंत्र प्रेम' के विपय मे फिर एक पत्र मिला। समय होता तो मै इस पर कुछ लिखना चाहता था। शायद लिखूँ भी। सव से पहले उन्हे विना किसी प्रकार के परिणाम का विचार किये अधिक से अधिक आनन्द की प्राप्ति

का आश्वासन अपने आपको दिला देना चाहिए। अलावा इसके, वे एक ऐसी बात के अस्तित्व का प्रचार करते है जो पहले मौजूद है और बहुत खराब है। कानून-रचना के तो मै खिलाफ ही हूँ। मै तो पूर्ण स्वाधीनता चाहता हूँ। पर हमारा आदर्श ब्रह्मचर्य हो, न कि विषय-सुख।

* * * *

स्त्री-पुरुषो के सम्बन्ध से, इस 'प्रेम' करने से, जो अनेक आपत्तियाँ उत्पन्न होती है उनका कारण यही है कि हम कई बार वैषयिक प्रेम को आध्यात्मिक जीवन और शुद्ध प्रेम समझने की भयंकर गलती कर बैठते है। दूसरे, हम अपनी बुद्धि का उपयोग इस विकार को धिःकारने या रोकने के लिए नही, बल्कि आध्यात्मिकता रूपी मोर के पखो से सुशोभित करने के लिए करते है।

* * * *

यह ऐसी जगह है जहाँ दोनो छोर मिलते है। स्त्री और पुरुषो के बीच के प्रत्येक आकर्षण को विषय-लालसा कहना भारी जड़ता होगी। पर यह अधिक से अधिक आध्यात्मिक दृष्टि है। यदि प्रेम को हम अच्छी तरह समझना चाहते है, तो हमे उसमे से उन तमाम बाहरी बातो को निकाल डालना चाहिए जो आध्यात्मिक न हो। तभी हम उसके शुद्ध स्वरूप या यथार्थ स्वरूप को पहचान सकेगे।

* * * *

संसार की भारी से भारी आपदाओं की जड़ है विषय-वासना। पर हम इसे दबाने और रोकने की कोशिश कभी नहीं करते। उलटा हर प्रकार से उसमे घी डालकर उस आग को प्रज्वलित ही करने की कोशिश करते हैं। और अंत मे शिकायत भी करते है कि हम पर आपत्तियाँ उमड़ रही है, हमे दु:ख हो रहा है।

* * * *

केवल शारीरिक सुख की इच्छा से अनेको व्यक्तियो के साथ विषयोपभोग करने से मनुष्य विलासी बन जाता है। विलासिता क्या है? स्त्री अथवा पुरुष मे विलासिता वह अशान्ति-पूर्ण अवस्था है जिसमे वह उत्सुकता-वश एक शराबी की तरह नित्य नवीनता को खोजता फिरता है या खोजती फिरती है। व्यभिचारी विलासी व्यक्ति अपने को एक बार रोक सकता है पर शराब-खोर कभी नहीं रोक सकता। शराबखोर शराबखोर है और व्यभिचारी व्यभिचारी। दोनो मे फ़र्क नाममात्र को है। थोड़ी सी भी शिथिलता आने पर विलासी अधम व्यभिचारी बन जाता है।

* * * *

प्रलोभन के साथ झगड़ते समय हम कई बार पहले ही से अपनी विजय की रोचक कल्पना मे तल्लीन हो जाते है। यह एक भारी कमजोरी है। ऐसे काम मे हम लग जाते है, जो हमारी शक्ति से बाहर है, जिसका पूरा करना न करना हमारी

शक्ति के अंदर की बात नहीं। पादड़ियो की तरह हम पहले ही से अपने आप से कहने लग जाते हैं। "मै ब्रह्मचर्य के पालन की प्रतिज्ञा करता हूँ।" इस ब्रह्मचर्य से हमारा इशारा होता है बाहरी ब्रह्मचय की ओरः पर यह असंभव है। क्योंकि पहले तो हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि हमें आगे चल कर किन किन परिस्थितियो मे से गुजरना होगा। संभव है, हमे ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े जिस मे प्रलोभन का प्रतिकार करना हमारे लिए असम्भव हो। दूसरे, इस तरह की एकाएक प्रतिज्ञा करने से हमे अपने उद्देश की ओर—सर्वोच्च ब्रह्मचर्य के निकट—जाने मे कोई सहायता नहीं मिलती, फिर उलटे भीतर कमजोरी रह जाने के कारण हमारा पतन अलवत्ते शीघ्र होता है।

पहले तो लोग बाहरी ब्रह्मचर्य को ही अपना उद्देश मान लेते है। फिर या तो वे संसार को छोड़ देते है या स्त्रियों से दूर दूर भागते फिरते हैं जैसे कि आफॉ के पादडी करते थे। इतने पर भी जब काम-वासना से पिण्ड न छूटता तब अपनी इन्द्रिय को ही काट डालते। पर इन सब से महत्वपूर्ण बात की तरफ उनका ध्यान नहीं जाता था। वासना शरीर का धर्म तो है नहीं। यह तो एक मानसिक वस्तु है। वैषयिकता से बचने के लिए विचार-शुद्धि परमावश्यक है। प्रलोभनो के सामने आने पर जो विकारोद्भव होता है, अंतर्युद्ध ही उसका उपाय है।

इन्द्रिय-विनाश करना तो उसी सिपाही की बात का सा काम है जो कहता है कि मै युद्ध पर जाऊँगा, पर तभी, जब

मुझे आप यह यकीन दिला दो कि निश्चय ही मेरी विजय होगी। ऐसा सिपाही सच्चे शत्रुओं से तो दूर ही दूर भागेगा पर काल्पनिक शत्रुओं से अलबत्ते लड़ेगा। वह कभी युद्ध-कला सीख ही नहीं सकता। उसकी सदा पराजय ही होगी।

दूसरे, केवल बाहरी ब्रह्मचर्य को यह समझ कर आदर्श मान लेना गलत है कि हम कभी तो जरूर उस तक पहुँच जायँगे। क्योंकि ऐसा करने से प्रत्येक प्रलोभन और प्रत्येक पतन उसकी आशाओं को एक दम नष्ट कर देता है और फिर इस बात पर से भी उसका विश्वास उठने लग जाता है कि ब्रह्मचर्य का आदर्श कभी संभवनीय या युक्तिसंगत भी है या नहीं ? वह कहने लग जाता है कि ब्रह्मचारी रहना असंभव है और मैंने अपने सामने एक गलत आदर्श को रख छोड़ा है। फिर वह एकदम इतना शिथिल हो जाता है कि अपने को पूरी तरह भोग-विलासों के अधीन कर देता है। यह तो उस योद्धा के समान हुआ जो युद्ध-विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपने बाहु पर कोई गुप्त शक्ति वाला तावीज बाँध लेता है और आँखे मूँद कर विश्वास करता है कि वह तावीज़ युद्ध मे उसकी रक्षा करता है। पर ज्योंही उसे तलवार का एक आध वार लगा नहीं कि उसका सारा धैर्य और पौरुष भागा नहीं। हम, अपूर्ण मनुष्य तो, यही निश्चय कर सकते हैं कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार अपनी भूत और वर्तमान अवस्था तथा चारित्र्य का ख़याल कर, अधिक से अधिक पवित्र ब्रह्मचर्य का हम पालन करे।

दूसरे, हम इस बात का कभी ख़याल न करे कि हम किसी

कौम को मनुष्यो की दृष्टि मे ऊँचा उठने के लिए कर रहे हैं। हमारे न्यायकर्त्ता, मनुष्य नही, हमारी अन्तरात्मा और परमेश्वर है। फिर हमारी प्रगति मे कोई बाधक नहीं हो सकता। तब प्रलो-भन हम पर कोई असर नही कर सकेंगे और प्रत्येक वस्तु हमें उस सर्वोच्च आदर्श की ओर बढ़ने मे सहायक होगी। पशुता को छोड़ हम नारायण-पद की ओर बढते जायँगे।

*　*　*　*

ईसाई नीति जीवन के रूपो और आकारो का वर्णन नहीं करती; बल्कि मनुष्य के प्रत्येक कार्य के लिए वह तो एक आदर्श, दिशा बतलाती है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषो के सम्बन्ध के विषय मे भी वह एक आदर्श आपके सन्मुख उपस्थित करती है। पर ईसाई-धर्म के विपरीत कल्पना रखने वाले लोग तो नाम रूप को ढूढ़ते फिरते हैं। पादड़ीशाही विवाहो मे ईसाईपन नाम मात्र को भी नही, वह तो उन्हीं का आविष्कार है। विषयोपभोग-हिंसा तथा क्रोध इनके विषय में हमें न तो अपने आदर्श को नीचा करना चाहिए और न उसमे कोई तोड़ मरोड़ ही करना चाहिए। पर पादड़ी लोगो ने यही कर डाला है।

*　*　*　*

ईसा के धर्म को अच्छी तरह न समझ पाने के कारण ही ईसाई और गैर-ईसाई ये दो भेद उन मे हो गये है। सब से स्थूल भेद वह है जो कहता है कि बतिस्मा किए हुए मनुष्यो को ईसाई समझो। ईसा के उपदेशो के अनुसार जो शुद्ध पारिवारिक जीवन व्यतीत करता है, जो अहिंसा का पालन करता है, वह

ईसाई है और इसके विपरीत आचरण करनेवाला ईसाई नहीं है। पर ऐसा कहना भी गलत है। ईसाई धर्म के अनुसार ईसाई और गैर ईसाई के बीच कहीं लकीर नहीं खीच सकते। एक तरफ प्रकाश है—ईसा, दूसरी ओर अंधकार है पशु। बस, इस मार्ग पर ईसा के नाम पर ईसा की ओर बढ़ो।

स्त्री पुरुषों के सम्बन्धो के विषय मे भी यही बात है। संपूर्ण, शुद्ध ब्रह्मचर्य आदर्श है। परमात्मा की सेवा करने वाला विवाह की उतनी ही इच्छा करेगा जितनी शराब पीने की। पर शुद्ध ब्रह्मचर्य के राजमार्ग मे कई मंज़िले हैं। यदि कोई पूछे कि हम विवाह करे या नहीं, तो उन्हे केवल यही उत्तर दिया जा सकता है कि यदि आपको ब्रह्मचर्य के आदर्श का दर्शन नहीं हो पाया है तो ख्वाहमख्वाह उसके सामने अपना सिर न झुकाओ। हाँ, वैवाहिक जीवन मे विषयो का उपभोग करते हुए धीरे धीरे उस आदर्श की ओर बढ़ो। यदि मै ऊँचा हूँ और दूर की एक इमारत को देख सकता हूँ और मुझसे छोटे कद वाला मेरा साथी उसे नही देख पाता तो मै उसे उसी दिशा मे कोई नज़दीकवाली वस्तु दिखा कर उद्दिष्ट स्थान की कल्पना कराऊँगा। उसी प्रकार जो लोग सुदूरवर्ती ब्रह्मचर्य के आदर्श को नहीं देख पाते उनके लिए प्रामाणिक विवाह उस दिशा की एक नजदीकी मंजिल है। पर यह मेरी और आपकी बताई मज़िल है। स्वयं ईसा तो सिवा ब्रह्मचर्य के और किसी आदर्श को न तो बता सकता था और न उसने बताया ही है।

* * * *

संघर्ष जीवनमय और जीवन संघर्षमय है। 'विश्रान्ति का नाम भी न लीजिए। आदर्श हमेशा सामने खड़ा है। मुझे तब तक शान्ति नही नसीब हो सकती जब तक मैं यह नही कहूँगा कि उस आदर्श को प्राप्त नही कर लेता बल्कि मै उसकी तरफ़ एकसा नही बढ़ता रहता।

उदाहरण के लिए ब्रह्मचर्य को लीजिए। अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे जिस प्रकार अकाल पीड़ितो को एक बार या अनेक बार भोजन करा देने से उनके पेट का सवाल हल नही होता, उसी प्रकार शारीरिक विषयोपभोग से मनुष्य को कभी सतोष नही होता। फिर सतोप कैसे होगा? ब्रह्मचर्य के आदर्श की संपूर्ण भव्यता को भली भाँति समझ लेने से, अपनी कमज़ोरी पूर्णतया स्पष्ट रूप से देख लेने से, और उसे दूर कर उस उच्च आदर्श की ओर बढ़ने का निश्चय करने से। बस, केवल इसी तरह संतोष हो सकता है। अपने आपको ऐसी परिस्थिति मे रखकर हमे कभी सतोष नही होगा जिसमे हम अपनी आँखो को बंद कर आदर्श के आदेशो और हमारे जीवन के बीचवाले भेद को देखने से इन्कार कर दें।

*　　*　　*　　*

विपय-बाण के आक्रमण अत्यंत विपम होते हैं। बाल्यावस्था और दूरवर्ती वृद्धावस्था ही ऐसी अवस्थायें हैं जो उसकी (विषय की) आक्रमण-कक्षा से निरापद हैं। इसलिए उसके साथ युद्ध करते हुए मनुष्य को कभी निराश न होना चाहिए; न कभी युवा-

वस्था मे ऐसी अवस्था मे पहुँचने की आशा करनी चाहिए जिसमे वह मन्मथ (विषय) के आक्रमणो से बच कर शाति से रह सके। एक क्षण भर के लिए भी मनुष्य कमजोरी को अपने पास न फटकने दे। पर शत्रु को नि:शस्त्र करनेवाले तमाम उपायो की खोज और योजना हमेशा एकसा करता रहे। चित्त मे विकारो को उत्पन्न करने वाली वस्तुओ को टालते रहो। सदा कार्यमग्न रहो। यह एक रास्ता हुआ। दूसरा रास्ता यह है कि यदि आप विकार को अपने अधीन नही कर सकते तो विवाह कर लो, अर्थात् ऐसी स्त्री को ढूँढ़ लो जो विवाह करने पर राजी हो। अपने आप से कहो कि यदि मै पतन से अपने आपको बचा नही सकता, यदि पतन अनिवार्य है तो वह केवल इसी स्त्री के साथ होगा।

यदि आपको कोई संतान हो तो दोनो मिल कर उसे सुशिक्षित कीजिए। और दोनो मिलकर ब्रह्मचारी रहने की कोशिश कीजिए। विकार से जितनी जल्दी मुक्त हो सके, उतना ही भला है। बस, अलावा इसके, मै और कोई उपाय नही जानता। हाँ, इन दोनो उपायो का सफलता पूर्वक उपयोग करने के लिए ईश्वर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्थापित कीजिए। हमेशा इस बात को याद रखिये कि आप वहाँ से (ईश्वर के घर से) आये है और वही वापिस भी जाना है। इस जीवन का उद्देश्य और अर्थ यही है कि हम उसकी मनशा को पूरा करे।

आप जितनी ही उसकी (परमेश्वर की) याद करेगे उतना ही वह आप की सहायता करेगा।

एक बात और है। यदि कही आप का पतन हो जाय तो

हिम्मत न हारिएगा। यह न सोचिएगा कि अब तो दीन-दुनिया से गये। यह ख़याल न कीजिएगा कि अब सावधान रहने से क्या फ़ायदा! यदि आप गिर गये है तो उठकर और भी अधिक बल के साथ युद्ध छेड़ दीजिए।

* * * * *

काम मनुष्य को अधा कर देता है, उसकी विचार-शक्ति को मूर्च्छित कर देता है। सारा ससार अंधकारमय हो जाता है। मनुष्य उसके साथ के अपने सम्बन्ध को भूल जाता है।

सयोग! कालिमा!! असफलता!!!

* * * * *

शिव शिव! इस भयंकर विकार को ग्रहण करके तुमने बहुत कष्ट उठाया, खूब दुख सहा! मैं जानता हूँ कि यह किस तरह प्रत्येक वस्तु को छिपा देता है। हृदय और विवेक को क्षण भर के लिए किस तरह संज्ञाहीन कर देता है। पर इससे मुक्ति पाने का एक ही उपाय है। निश्चयपूर्वक समझ लो कि यह एक स्वप्न है, एक संमोहनास्त्र है, जो आता है और निकल जाता है और तुम थोड़ी ही देर मे अपनी पूर्व स्थिति को पहुँच जाओगे। विकार की आँधी जब अपने जोरो मे होगी तब भी तुम इस बात को समझ सकोगे। परमात्मा तुम्हारी सहायता करे!

* * * *

इस बात को कभी न भूल कि तू न तो कभी पूर्णतः ब्रह्म-चारी रहा है और न रह सकता है। हाँ, तू उसके नज़दीक जरूर

पहुँच सकता है। और तुझे इस प्रयत्न मे कभी निराश न होना चाहिए। प्रलोभन के सामने और पतन की डाढ़ों में पहुँच जाने पर भी अपने आदर्श को न भूलना, और न भूलना इस बात को कि, तू यहाँ से भी अछूता रहकर भाग सकता है। अपने दिल से कह कि मै गिर रहा हूँ पर मै पतन से घृणा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस समय नहीं, तो अगली बार जरूर मेरी विजय होगी।

* * * * *

संपूर्ण ब्रह्मचर्य नही, पर इसके अधिक से अधिक नजदीक पहुँचने के उद्देश से आप प्रयत्न शुरू कीजिए। सपूर्ण ब्रह्मचर्य तो एक आदर्श सृष्टि की वस्तु है। शरीर धारी मनुष्य उसे कभी प्राप्त नही कर सकता। वह तो केवल उस तरफ बढ़ने का प्रयत्न मात्र कर सकता है क्योकि वह ब्रह्मचारी, नहीं विकारपूर्ण है। यदि आदमी विकारपूर्ण नहीं होता तो उसके लिए न तो ब्रह्मचर्य के आदर्श की और न उसकी कल्पना ही की आवश्यकता होती। गलती यह है कि मनुष्य अपने सामने संपूर्ण (बाह्य—शारीरिक) ब्रह्मचर्य का आदर्श रखता है, न कि उसके लिए प्रयत्न करने का। प्रयत्न मे एक बात गृहीत समझी जाती है—यह कि हर हालत मे और हमेशा ब्रह्मचर्य विकारवशता से श्रेष्ठ है। सदा अधिकाधिक पवित्रता को प्राप्त करना मनुष्य का धर्म है।

यह भेद बड़ा महत्वपूर्ण है। बाहरी ब्रह्मचर्य को आदर्श समझने वाले के लिए पतन या ग़लती सर्वनाशक होती है। एक बार की गलती भी पुनः प्रयत्न करने से उसे निराश कर देती है।

प्रयत्नवादी के लिए पतन हुई नही। निराशा उसके पास भी नहीं फटकती। विघ्न-बाधाये उसके प्रयत्न को रोकती नहीं बल्कि उसे और भी प्रबल प्रयत्न के लिए प्रेरणा करती है।

* * * * *

जब मनुष्य केवल स्वार्थी होता है, अपने व्यक्तिगत आनन्द को छोड़ कर और किसी श्रेष्ट बात को जानता ही नही, तब भले ही उसके लिए प्रेम—एक स्त्री को प्रेम करना—उन्नतिकर प्रतीत हो। पर जिस मनुष्य ने एक बार परमात्मा की भक्ति का दर्शन कर लिया है, जो अपने पड़ोसी को अपने ही जैसा प्यार करने की कला को थोड़े से अंशो मे भी जान गया है, वह तो ज़रूर ही उस वैषयिक प्रेम को एक ऐसी वस्तु समझेगा जिससे छुट्टी पाने की कोशिश करना ही श्रेयस्कर है। और तुम भी इस ईसाई भाईपन की मुहब्बत से क्यो न संतुष्ट रह सकते हो? क्षमा करना, तुम्हारा यह कहना ग़लत है, स्त्री-जाति का अपमान है, कि उसके विषय के प्रेम के कारण तुम अपनी पवित्रता की रक्षा नही कर सकते हो। प्रत्येक मनुष्यप्राणी और ख़ास कर सच्चा ईसाई चाहता है कि वह शारीरिक नही, आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम हो। अपनी पवित्रता की रक्षा तुम अपनी ही शक्ति से करो और उस बहन को केवल अपना निःस्वार्थ, निर्विकार प्रेम अर्पण करो। परमात्मा के सिंहासन पर मनुष्य को न बैठाओ। विश्वास रक्खो, वह अनंत शक्ति (ईश्वर) तुम्हे इतना अधिक बल देगा कि तुम जिसकी आशा भी नहीकर सकते। हाँ, और इसके अतिरिक्त उस बहन का निर्मल प्रेम भी तुम्हे बल देगा।

तुम लिखते हो कि तुम्हारे प्रेम से उसकी रक्षा की जाय। मै नहीं समझा, तुम्हारा मतलब किससे है? मै यह भी नहीं समझ सका कि तुम्हे उसकी क्यो और किस कारण इतनी दया आती है? हम लोगो मे यह एक रिवाज सा हो गया है कि पुरुष किसी न किसी अनोखे ढग से शादी करना चाहते हैं।

"यदि मनुष्य निर्मल और निर्विकार प्रेम कर सकता है तो पहले वह ऐसा ही शुद्ध प्रेम करे।" यदि यह उससे न हो सके तो शादी कर ले। यही ईसा ने कहा है और पॉल ने इसका समर्थन किया है। हमारी बुद्धि भी इसी बात को कहती है। और आदमी किसी नये ढग से शादी कर ही नहीं सकता। जैसा कि संसार अब तक करता आया है वैसा ही उसे भी करना चाहिए। अर्थात् पहले वह अपना एक साथी ढूंढ ले, उसके प्रति सच्चा रहने का निश्चय कर ले और मृत्यु तक कभी उसे न छोड़े। साथ ही उसकी सहायता से विनष्ट ब्रह्मचर्य को पुनः प्राप्त करने की कोशिश करे। भले ही हम सामाजिक या धार्मिक रीति-रिवाजो को न मानें; पर फिर भी हम विवाह को ससार के विपरीत किसी दृष्टि-कोण से नहीं देख सकते।

विवाह तो स्त्री पुरुषो के पारस्परिक आकर्षण का स्वाभाविक फल है और यही रहेगा भी। विवाह मे यदि कहीं इस हार्दिक और पारस्परिक प्रेम का अभाव है तो वह एक बुरी चीज़ है।

*   *   *   *   *

मेरा ख़याल है, मै तुम दोनों को अच्छी तरह समझ गया हूँ। मै चाहता हूँ कि तुम्हारे बीच मे जो कुछ भी दुःख और

अशान्ति का कारण है उसे निकाल डालू और तुम्हारे जीवन को आनन्दमय बना दूँ। उसका यह कथन सत्य है कि स्त्री-पुरुषों के बीच का अनन्य प्रेम, भक्ति का पोषक नहीं बाधक है। पर इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि तुम उस पर ऐसा ही अनन्य प्रेम करते हो। यह स्वाभाविक भी है। यह तो मनुष्य के शरीर और स्वभाव का दोष है। पर इस बात को स्वीकार करते हुए हमें केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए जो फायदेमन्द हों और अच्छी हों। और तमाम बुरी बातों को छोड़ देना चाहिए। यह भाव भला है कि हमारे प्रेम का पात्र सुंदर है—प्रेम करने योग्य है। मनुष्य स्वार्थवश प्यार नही करता। परमात्मा ही के आदेश को पूरा करने में, एक दूसरे की सहायता करने ही के लिए प्यार करता है। यह तो एक आनद की वस्तु है। पर इसके पहले हमे उस प्यार को वैषयिकता के विष से मुक्त कर लेना ज़रूरी है। कभी कभी यही हमे निर्विकार दिखाई देने लगता है। ईर्ष्या इसका चिन्ह है। और भी कितने ही सुंदर सुंदर रूप धारण कर, यह हमारे सामने आता है। मैं तो तुम्हे यही अमली सलाह दूँगा कि अपने विकारों पर कभी विचार न करो। उनको एक दूसरे के प्रति प्रकट भी न करो (यह छल नहीं, संयम है) अपने प्रेमपात्र को हमेशा अपने जीवन कार्य के विषय में लिखो, जिसमें वह तुम्हारा साथी हो। एक दूसरे पर प्यार करने के विषय मे लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं। यह तो तुम भी जानते हो और वह भी, इसलिए अपने तमाम कार्यों और शब्दो का हेतु भी तुम जानते हो। अपने प्रेमपात्र के प्रति अपने हृद्गत

भावो को प्रकट करने की भी सीमा होती है। समझदार आदमी को चाहिए कि वह उसका उल्लंघन न करे। तुमने उसका उल्लंघन कर डाला है। इस सीमा को लांघ कर जो कुछ भी भाव प्रकाशन किया जाता है वह निरानन्द और भार सा हो जाता है।

परमात्मा ने तुम्हे प्रेम दिया है। उससे सच्चा लाभ उठाओ। विशुद्ध प्रेम का पहले अर्थ समझ लो। सच्चा प्रेम स्वार्थी नहीं होता। वह अपने विषय मे नहीं सोचता। सदा अपने प्रेमपात्र के कल्याण के विषय में सोचता रहता है। ज्योंही हमारा प्रेम यह विशुद्ध स्वरूप धारण कर लेता है त्योंही उसकी अंतगत दुःखद वेदना नष्ट हो जाती है। वह केवल आनंदमय हो जाता है।

प्रेम कभी हानिकर नहीं होता। हाँ, यदि वह बकरी के रूप मे अहंकार का भेडिया न हो—बल्कि सच्चा प्रेम हो तो। एक कसौटी तुम्हे बतला देता हूँ। अपने प्रेम को जॉचने के लिए मनुष्य ज़रा अपने दिल से यह सवाल पूछ ले "मेरे प्रेम पात्र के भले के लिए मैं उसे छोड़ने के लिए तैयार हूँ, उससे सम्बन्ध त्यागने के लिए उद्यत हूँ? मेरी यह तैयारी है कि मैं उसे कभी न देख पाऊँ तो मेरा दिल जरा भी न छट पटाये?" यदि मेरी यह तैयारी हो तब तो ज़रूर वह शुद्ध है, निरपेक्ष है। किन्तु यदि इसमे हमारे दिल को जरा भी पीडा हो, एक अंध आकांक्षा हो, थोड़ी भी चिता हो तो समझ लीजिए कि वह स्वार्थ से कलंकित है, वह वही भेड़िया है जिसे मार डालना श्रेयस्कर है। मै जानता हूँ कि तुम भावुक हो, धर्मशील हो। मुझे विश्वास है कि यदि तुम्हे

यह भेड़िया किसी भी रूप मे दिखाई देगा तो तुम ज़रूर उसे मार डालोगे।

हाँ, सब मनुष्यो को आदमी एक सा प्यार नही कर सकता। अक्सर एक ही व्यक्ति को प्यार करने मे असीम सुख का अनुभव होता है। पर स्मरण रहे, यह प्यार उसके प्रति हो न कि अपने इन विकारो से सम्बन्ध रखने वाले आनन्दानुभव के प्रति।

*　　*　　*　　*　　*

मैंने इस 'प्रेम' के विषय में बहुत विचार और मनन किया; किन्तु मुझे मानव-जीवन के लिए इसका कोई अर्थ न दिखाई दिया, न मैं इसके लिए कोई स्थान ही क़ायम कर सका। पर फिर भी उसका अर्थ और उसका स्थान अत्यंत स्पष्ट और निश्चित है। विलास और ब्रह्मचर्य के बीच जो संघर्ष चल रहा है, उसे सौम्य करने मे इसका उपयोग होता है। विषय-लालसा के मुक़ाबले मे जो युवक और युवतियाँ अपने को कमजोर पावे, वे अपने जीवन के अत्यंत नाज़ुक समय मे सोलह से लगाकर बीस वर्ष की अवस्था तक अटूट वैवाहिक बन्धन मे बॅध जाने के लिए 'प्रेम' कर सकते हैं और अपने को विकार की उन भीषण यंत्रणाओ से बचा सकते हैं। यही और केवल यही प्रेम को स्थान है। पर यदि वह विवाह के बाद व्यक्तियो के जीवनोपवन मे कहीं पैर रखना चाहे तब तो उसे उसी समय मार भगाना चाहिए। वह लुटेरा है, घृणा का पात्र है।

*　　*　　*　　*　　*

"प्रेम करना अच्छा है या बुरा" ?—मेरे लिए तो इस सवाल का उत्तर स्पष्ट है।

यदि मनुष्य पहले ही से मनुष्योचित आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है तब तो उसके लिए 'प्रेम' और विवाह पतन है। क्योंकि अपनी शक्तियो का कुछ हिस्सा उसे अपनी पत्नी, कुटुम्ब या अपने प्रियतम को देना होगा। पर यदि वह पशु-जीवन व्यतीत कर रहा हो—खाने, कमाने, लिखने के क्षेत्र मे हो तब तो शादी कर लेना ही उसके लिए फ़ायदेमन्द है, जैसा कि पशु और कीटों के लिए है। शादी उसके प्रेम और सहानुभूति के क्षेत्र को बढ़ाने में सहायता करेगी।

*　　*　　*　　*　　*

मैं नही सोचता कि तुम्हें स्त्रियो से किसी प्रकार का भी विशेष कर आध्यात्मिक सम्बन्ध रखने की आवश्यकता है। स्त्रियो के साथ मे सामाजिक सम्बन्ध भी मनुष्य को तभी रखना चाहिए जब स्त्री-पुरुष विषयक भेदभाव भी उसके दिल से निकल गया हो।

मेरा ख़याल है, कि तुम्हे परिश्रम की भारी आवश्यकता है। परिश्रम ऐसा हो जो तुम्हारी समस्त शक्तियो को सोख ले।

'उत्पादक शक्ति' विषयक श्रीमती अलाइस स्टॉकहम का वह निबन्ध मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होने मेरे पास भेजा है। वे कहती हैं कि जब मनुष्य को अन्य प्राकृतिक क्षुधाओ के साथ साथ विषय-क्षुधा लगती है, तब वह समझ ले कि यह किसी

महान् उत्पादक कार्य के लिए प्रकृति का आदेश है। केवल, वह विषय-वासना के अधम रूप मे प्रकट हो रहा है। वह एक कूवत है जिसको बलिष्ट इच्छा-शक्ति और दृढ़ प्रयत्न के द्वारा बड़ी आसानी से अन्य शारीरिक अथवा आध्यात्मिक कार्य मे परिणत किया जा सकता है।

मेरा भी यही ख़याल है। वह सचमुच एक शक्ति है जो परमात्मा की इच्छा को पूर्ण करने मे सहायक हो सकती है। वह पृथ्वी पर स्वराज्य की स्थापना करने मे अपना महत्वपूर्ण काम कर सकती है। जनन-कार्य द्वारा यही काम—पृथ्वी पर वैकुण्ठ को लाने का काम—हम अगली पुश्त पर अर्थात् अपने बच्चों पर ढकेल देते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा इस शक्ति को ईश्वरेच्छा पूर्ण करने मे प्रत्यक्ष लगा देना जीवन का सर्वोच्च उपयोग है। यह कठिन है, पर असंभव नही। हमारे सामने सैकड़ो नहीं, हज़ारो आदमियो ने इसे करके दिखा दिया है।

इसलिए यदि तुम अपने विकार को जीत सको तब तो मैं तुम्हे बधाई दूँगा। किन्तु यदि उसके सामने हारना ही पड़े तो शादी कर लेना। कोई चिंता नहीं, यह काम ज़रा गौण तो होगा पर बुरा नही है।

कामाग्नि से जलते हुए इधर उधर निरुद्देश पागल की तरह दौड़ते फिरना बुरा है। इस विष को रक्त में अधिक न फैलने देना चाहिए।

हाँ, एक बात और याद रखना। यदि तुम्हारी कल्पना स्त्री-सौख्य मे कुछ विशेष आनन्द, विशेष सुख को बताने की कोशिश

करे तो उस पर कभी विश्वास न करना। यह सब कामुकता से उत्पन्न होने वाला भ्रम है। जितना पुरुष के साथ बातचीत करने और उठने बैठने में आनन्द आता है उतना ही स्त्रियों के सान्निध्य से भी आता है। पर ख़ासकर स्त्री-सान्निध्य मे ऐसा कोई विशेष आनन्द नही है। यदि हमे इसके विपरीत दीखता है तो ज़रूर समझ लेना चाहिए कि हम भ्रम मे है। भ्रम ज़रा सूक्ष्म है, मीठा है, पर है ज़रूर भ्रम ही।

❀ ❀ ❀ ❀

तुम पूछते हो, विकार से झगड़ने का कोई उपाय बताइए। ठीक है। परिश्रम, उपवास आदि गौण उपायो मे सब से अधिक कामयाब और कारगर उपाय है दारिद्र—निर्धनता। बाहर से भी अकिंचन दिखाई देना जिससे मनुष्य स्त्रियों के लिए आकर्षण की वस्तु न रहे। पर प्रधान और सर्वोत्तम उपाय तो अविरत संघर्ष ही है। मनुष्य के दिल मे हमेशा यह भाव जाग्रत रहना चाहिए कि यह संघर्ष कोई नैमित्तिक या अस्थायी अवस्था नहीं बल्कि जीवन की स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था है।

* * * * *

तुमने मुझे 'स्कोपट्सी' ❀ जाति के विषय मे पूछा है।

❀ यह रूस की एक किसान जाति है जिसका पुरुष वर्ग ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करने में समर्थ होने के लिए श्रद्धा पूर्वक अपनी जननेंद्रिय को काट डालता है।

—अनुवादक

लोग उन्हे बुरा कहते है, क्या यह उचित है ? क्या वे मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवे अध्याय का आशय ठीक ठीक समझ गये है, जब कि वे उसके १० वे पद्य के आधार पर अपने तथा दूसरो के जननेन्द्रियो को काट डालते हैं। प्रश्न के पहले हिस्से के विषय मे मेरा यह कथन है कि पृथ्वी पर कोई 'बुरे' लोग नही है।

सभी एक पिता की संन्तान है। सभी भाई २ है। सभी सम समान हैं। न कोई किसी से अच्छा है न बुरा। स्कोपट्सी लोगो के विषय मे मैंने जो कुछ भी सुना है उसपर से मै तो यही जानता हूँ कि वे नीतिमय और परिश्रमी जीवन व्यतीत करते है। अब इस प्रश्न का उत्तर कि वे प्रवचन का ठीक आशय समझकर ही अपनी इन्द्रियो को काटते है या कैसे ? मै निर्भ्रान्त चित्तसे कहता हूँ कि उन्होने प्रवचन के आशय को ठीक ठीक नहीं समझा। खासकर अपनी तथा दूसरो की इन्द्रियो को काटना तो धर्म के साफ़ साफ़ विपरीत है। ईसा ने ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश दिया है पर यथार्थतः उसी ब्रह्मचर्य का मूल्य और सच्चा महत्व है जो अन्य सद्गुणो की भॉति श्रद्धापूर्वक दीर्घ प्रयत्न से विकारो के साथ युद्ध करके प्राप्त किया जाता है। उस संयम का महत्व ही क्या, जहॉ पाप की सम्भावना ही नही ? यह तो उसी मनुष्य का सा हुआ जो अधिक खाने के प्रलोभन से अपने को बचाने के लिए किसी ऐसी दवा को खा ले जिसमें उसको भूख ही कम हो जाय; या कोई युद्ध-प्रिय आदमी अपने को लड़ाई मे भाग लेने से बचाने के लिए अपने हाथ पैर बँधवाले। अथवा गाली देने की बुरी आदतवाला अपनी ज़बान को ही इस ख़याल से काट डाले कि उसके मुँह से

गाली निकलने ही न पावे। परमात्मा ने मनुष्य को ठीक वैसा ही पैदा किया है जैसा कि वह यथार्थ मे है। उसने उसकी मरणाधीन काया मे प्राणो को इस लिए प्रतिष्ठित किया है कि वह शारीरिक विकारों को अपने अपने अधीन करके रक्खे। मानव-जीवन का रहस्य यही सघर्ष तो है। परमात्मा ने उसे यह सर्वांगपूर्ण शरीर इस लिए नही दिया कि वह अपने तथा दूसरे के शरीर के किसी हिस्से को काट कर उसे विकलाग बना दे।

यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ओर इस तरह आकर्षित होते हैं तो उसमे भी परमात्मा का एक हेतु है। मनुष्य पूर्ण बनने के लिए बनाया गया है। यदि एक पुश्त इस पूर्णता को किसी तरह न प्राप्त कर सके तो कम से कम दूसरी पुश्त उसे प्राप्त करने की कोशिश करे। धन्य है, उस दयाधन की चातुरी को! ऐ मनुष्य, अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन। और इस पूर्णता को प्राप्त करने की कुंजी है ब्रह्मचर्य। केवल शारीरिक ब्रह्मचर्य नही, बल्कि मानसिक भी—विषय-वासना का संपूर्ण अभाव। यदि मनुष्य संपूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने लग जाय तो मानव-जाति का जावनोद्देश ही सफल हो जाय। फिर मनुष्य के लिए पैदा होने और जीने की कोई आवश्यकता नही रह जाय। क्योकि तब तो मनुष्य अमर-पूर्ण हो जॉयगे। फिर विवाह आदि की कोई झंझट ही न रह जायगी। पर चूँकि मनुष्य ने अभी उस पूर्णता को प्राप्त नही किया है इसलिए वह नवीन पुश्तो को पैदा करता जा रहा है। ये नवीन पुश्ते अपनी शक्ति के अनुसार पूर्णता के अधिकाधिक नजदीक पहुँचती जा रही है। इसके विपरीत यदि सभी

मनष्य इन अज्ञान किसानो की भाँति अपने शरीरो को विकलाँग कर ले तो अपने जीवनोद्देश को—परमात्मा की इच्छा को—बिना ही पूर्ण किये, मनुष्य-जाति का अंत हो जायगा ।

यह पहला कारण है जिससे मै उन अज्ञान किसानो के कार्य को गलत समझता हूँ । दूसरा कारण यह है कि धर्माचरण कल्याण-प्रद होता है (ईसा ने कहा है-मेरी धुरा आसान और बोझ हलका है) और हर प्रकार की हिंसा की निन्दा करता है । विकलाँग करने और कष्ट देने की भी वह अवश्य ही निंदा करता है । यदि यह ज्यादती कोई दूसरे पर करता हो तब तो पाप हुई है । पर खुद अपने ऊपर भी ऐसा अत्याचार करना ईसाई-क़ानून का भंग करना है ।

तीसरा कारण यह है कि यह किसान-जाति स्पष्ट-रूप से मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवे अध्याय के बारहवें पद्य का अर्थ गलत करती है । अध्याय के आरंभ मे जो कुछ कहा गया है, वह सब विवाह के विषय मे है । और ईसा विवाह के लिए मना नही करता । वह तो तिलाक़ की, एक से अधिक पत्नियाँ करने की मुमानियत करता है । इस तरह विवाहित जीवन मे भी ईसा ने संयम पर ज्यादह से ज्यादह जोर दिया है । मनुष्य को केवल एक ही पत्नी करना चाहिये । इस पर शिष्यो ने शंका की (पद्य १०) कि यह संयम तो बड़ा मुश्किल है, एक ही पत्नी से काम चलना तो नितान्त कठिन है । इस पर ईसा ने कहा कि यद्यपि सभी मनुष्य जन्म-जात अथवा मनुष्यों के द्वारा बनाये गये नपुंसक पुरुष की भाँति विषय-भोग से अलग नहीं रह सकते तथापि कई ऐसे लोग हैं

जिन्होने उस स्वर्गीय राज्य की अभिलाषा से अपने को नपुंसक बना लिया है—अर्थात् आत्म-बल से विकारो को जीत लिया है और प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह इनका अनुकरण करे। "स्वर्गीय राज्य की अभिलाषा से अपने को नपुंसक बना लिया है" इन शब्दो का अर्थ शरीर पर आत्मा की विजय करना चाहिये न कि शरीर को विकलांग बना देना। क्योकि जहाँ पर शारीरिक विकलाङ्गता से उनका मतलब है तहाँ उन्होने कहा है—"दूसरे मनुष्यो के द्वारा बनाये गये नपुंसक पुरुष" पर जहाँ आत्मिक विजय से मतलब है तहाँ उन्होने कहा है—"अपने को नपुंसक बना लिया।"

यह मेरा अपना मन्तव्य है और मै उस १२ वें पद्य का इस तरह अर्थ करता हूँ। पर यदि प्रवचन के शब्दो का यह अर्थ तुम्हे संतोष जनक न भी दिखाई देता हो तो भी तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि केवल आत्मा ही जीवन का देने वाला है। ऐच्छिक रूप से या ज़बरन् मनुष्य को विकलांग कर देना ईसाई-धर्म की आत्मा के बिल्कुल विपरीत है।

*　　*　　*　　*　　*

मेरा ख़याल है कि विवाह कर लेने पर स्त्री-पुरुषो का आपस मे विषयोपभोग करना अनीतियुक्त नही है। पर इस पर अधिकारी रूप से कुछ लिखने के पहले मै इस प्रश्न पर सूक्ष्मता-पूर्वक विचार कर लेना ठीक समझता हूँ। क्योकि आखिर इस कथन मे भी बहुत सत्यांश है कि महज़ अपनी विषय-वासना को

तृप्त करने के लिए विषय-सेवन करना पाप है। मेरा तो ख़्याल है कि महज़ आनंद प्राप्त करने के लिए विषय-सेवन करना भी उतना ही बड़ा पाप है जितना बड़ा कि विषय सेवन से बचने के लिए अपनी इन्द्रिय को काट डालना है। भूखों मरकर प्राण देना जितना भयंकर पाप है, अधिक खाकर जीवन से हाथ धोना भी उतना ही बड़ा पाप है। वह अन्न-सेवन मनुष्य के लिए लाभदायक और उपयोगी हैं जो उसको अपने भाइयों की सेवा करने के योग्य प्राण-शक्ति अर्पण करता है। उसी प्रकार विषय-भोग भी उतना ही जायज़ है जो मनुष्य को अपने वंश को क़ायम रखने के लिए आवश्यक हो।

स्वेच्छापूर्वक नपुंसकत्व धारण करने वालों का यह कथन ठीक है कि आध्यात्मिक आवश्यकता के न होते हुए भी विषय-भोग करना बुरा है, अनीतियुक्त है। महज़ शारीरिक सुख के लिए तथा प्रकृति के बताये समय के अतिरिक्त भी बार बार विषय-भोग करना पाप है, व्यभिचार है। पर उनका यह कथन ग़लत है कि वंश को चलाने वाली संतान की प्राप्ति के लिए अथवा आध्यात्मिक प्रीति के ख़्याल से विषयभोग करना भी ग़लत है।

इन्द्रियों का काटना कुछ कुछ ऐसा काम है। फ़र्ज़ कीजिए कि एक आदमी बड़ा ही शिथिल और अनीतिमय जीवन व्यतीत कर रहा है। वह अपने अनाज से शराब बना बनाकर पीता रहता है और नशे में चूर रहता है। बाद में किसी प्रकार उसे कोई यह जॅचा देता है कि यह बुरा है, पाप है और वह भी इसकी यथार्थता को समझ लेता है। अब इस बुरी आदत को छोड़कर

अपने अनाज का सदुपयोग करने के बदले वह सोचता है कि इस व्यसन से बचने का स्वर्णोपाय तो यही है कि अनाज ही जला डालूँ और वह ऐसा ही कर भी डालता है। फल यह होता है कि वह व्यसन उसके अन्दर ज्यो का त्यो रह जाता है। उसके पड़ोसी पहले ही की भाँति शराब बनाते रहते है। पर वह न अपने बीबी-बच्चो का, न दूसरो का तथा न अपना ही पेट भर सकता है।

ईसा ने नन्हे नन्हे बच्चो की तारीफ़ व्यर्थ नही की। व्यर्थ ही उसने यो नहीं कहा कि स्वर्ग का राज्य उन्ही का है। बड़े बड़े बुद्धिमान् लोगो के ख्याल मे जो बाते नही आतीं, उनका आकलन वे फ़ौरन कर लेते है। हम स्वय इस तत्व की यथार्थता को अनुभव करते हैं। यदि बच्चे पैदा होना बन्द हो जांय तो स्वर्ग का राज्य पृथ्वी पर आने की सभी उम्मीदो पर पानी फिर जाय। बस, वही बच्चे हमारी आशा के आधार हैं। हम तो पहले ही बिगड़ चुके है और अब यह महा कठिन है कि हम अपने को पुनः पवित्र कर सके। पर यहाँ तो प्रत्येक पुश्त मे, प्रत्येक परिवार मे नये नये बच्चे पैदा होते हैं जो निर्दोष पवित्र आत्माये हैं। सम्भव है ये आखिर तक पवित्र रह सकें। नदी का पानी गन्दा और पवित्र है पर उसमे कितने ही निर्मल जल के स्रोत मिले हुए है। इसलिए यह आशा करना व्यर्थ नही कि एक दिन उस नदी का पानी भी उन्ही सोतो के समान निर्मल हो सकेगा।

यह एक महान प्रश्न है और इस पर विचार करते हुए मुझे बड़ा आनद आता है। मै तो केवल यह जानता हूँ कि विकार-

मय जीवन तथा विकार के भय से इन्द्रिय को काटकर जीना एक सा ही बुरा है । पर इन दोनों में इन्द्रिय को काटना बहुत बुरा है ।

विकाराधीनता में कोई गर्व की बात नहीं, बल्कि लज्जा की बात है। पर अंग-वैकल्य में लज्जा नहीं । बल्कि लोग तो इस बात पर अभिमान करते हैं कि उन्होंने प्रलोभन और संघर्ष से बचने के लिए परमात्मा के नियम को ही तोड़ डाला । सच तो यह है कि अंग-वैकल्य से विकार नष्ट नहीं होता । यथार्थतः आत्मा की, हृदय की शुद्धि की आवश्यकता है । लोग इस जाल में क्यो फँस जाते हैं ? इसका एक मात्र कारण यह है कि अन्य सब विचार भले ही नष्ट हो जॉय पर काम-विकार एक ऐसी वस्तु है जो कभी नष्ट हो ही नहीं सकता । पर फिर भी मनुष्य का कर्तव्य है कि वह तमाम विकारो का नाश करने की कोशिश करे । तन मन धन से यदि मनुष्य परमात्मा को प्यार करने लग जाय तो वह अपने आप को पूरी तरह भूल सकता है । पर वह तो बड़ा लंबा रास्ता है और यही कारण है कि लोग घबड़ाकर कोई छोटा नज़दीक का रास्ता ढूँढ़ने को कोशिश करते हैं कि इस नज़दीक के रास्ते से चल कर भी हम अपने मुकाम पर पहुँच सकेंगे और इस भीषण विकार से अपना पिंड छुड़ा सकेंगे । पर दुर्दैव तो यह है कि ऐसी पगडण्डियों पर भटकने से मनुष्य अक्सर अपने मुकाम पर पहुँचने के बदले उलटा किसी दलदल मे जा फँसता है ।

* * * *

वंश को टिकाये रखने के लिए अलबत्ता विवाह अच्छा और आवश्यक है। पर यदि लोग केवल इसी उद्देश से विवाह करना चाहे तो यह आवश्यक है कि वे इस बात को महसूस करे कि पहले हमारे अन्दर अपने बच्चो को सुशिक्षित और सुसंस्कृत करने की शक्ति है। अपने बच्चो को वे समाज का अन्न खुटाने वाले नही बल्कि ईश्वर और मनुष्य का सच्चा सेवक बनाने के इच्छुक हो और इसके लिए यह आवश्यक है कि उनमें ऐसी शक्ति हो जिससे वे दूसरो की कृपा पर नही, बल्कि अपने पराक्रम से जीयें। मनुष्य जाति से जितना लें, उससे अधिक उसे दे।

इसके विपरीत हम लोगो मे यह कल्पना रूढ़ है कि मनुष्य तभी शादी करे जब वह दूसरे की गर्दन पर अच्छी तरह सवार हो गया हो। दूसरे शब्दों में जब उसके पास 'साधन-विपुलता' हो। पर होना चाहिए इसके ठीक विपरीत। केवल वही विवाह करे जो साधन-हीन होने पर भी अपने बच्चो का पालन-पोषण और शिक्षा का बोझ उठाने की क्षमता रखता हो। केवल ऐसे ही पिता अपने बच्चो को अच्छी तरह सुशिक्षित कर सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

विषयेच्छा यदि ईश्वर के क़ानून को पूर्ण करने का नहीं तो अपने वंशजो द्वारा उसकी पूर्ति को अनिवार्य बनाने के साधनो की रचना की भूख है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे इसकी सत्यता की अनुभूति भी होती है। मनुष्य जितना ही उस क़ानून की

पूर्ति के नज़दीक पहुँचता है, उतना ही उसकी क्षुधा से वह मुक्त होता जाता है। साथ ही वह जितना ही उसकी पूर्ति से दूर रहता है उतने ही ज़ोरों से वह विषय-क्षुधा को अनुभव करता है।

❀ ❀ ❀ ❀

विषय-भोग आकर्षक इसलिए है कि वह हमारे एक महान् कर्तव्य से मुक्ति पाने का साधन है। मानो वह मनुष्य को एक बोझ से मुक्त कर, उसे दूसरे पर डाल देता है। मैं नहीं, तो मेरे बच्चे स्वर्गीय राज्य को पावेंगे। इसीलिए स्त्रियाँ अपने बच्चों में इतनी तन्मय हो जाती हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

एन-ने ब्रह्मचर्य की कल्पना का बड़ा विरोध किया। दलील यह पेश की गई कि यदि सभी ब्रह्मचर्य का पालन करने लग जायँगे तो मनुष्य-जाति का अंत ही हो जायगा। इसका उत्तर मैंने इस तरह दिया था। पादड़ियों के विश्वास के अनुसार संसार का अंत एक न एक दिन निश्चित है। विज्ञान भी यही कहता है कि किसी एक समय पृथ्वी के तमाम प्राणी ही नहीं, स्वयं पृथ्वी भी नष्ट हो जायगी। फिर केवल इसी कल्पना मे इतना चौंकने योग्य क्या है कि नीतिमय और सदाचार-युक्त जीवन से एक दिन मनुष्य-जाति का अंत होने की सम्भावना है। शायद पहली और दूसरी बात साथ साथ भी हो। बल्कि किसी लेखक ने अपने लेख मे यह सूचित भी किया है "ब्रह्मचर्य का पालन कर मनुष्य अपने को

ऐसी बुरी मौत से बचा क्यों न ले।" वाह! कैसी खरी बात है।

हरशेल ने एक हिसाब लगाया है। वह कहता है आज की तरह यदि संसार के आरंभ-काल से मनुष्य-संख्या प्रति वर्ष दूनी होती रहती तो पहले स्त्री-पुरुष के बाद, सात हजार वर्ष मे ही,—मान लें कि अभी मनुष्य जाति की उम्र इतनी ही है—हमारी संख्या बेहद बढ़ जाती। मान लें कि पृथ्वी का पृष्ठ भाग एक बड़ा भारी पिरामिड का आधार है। और उस पर उन समस्त मनुष्यों को पिरामिड के आकार मे एक के सिर पर दूसरा इस तरह खड़े कर दे तो वे पृथ्वी से सूर्य की ऊँचाई के २७ गुना अधिक ऊँचा पहुँच जाते।

नतीजा क्या निकला? सिर्फ दो बातें—या तो हमे प्लेग या महायुद्धो को मानना और चाहना चाहिए या संयमशील जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। बढ़ती हुई मनुष्य संख्या से संयम का आदर्श ही हमे बचा सकता है।

प्लेग और युद्धो के अंकों को संयमशील राष्ट्र की जन-संख्या से तुलना करके देख लेना चाहिए। तुलना बड़ी मनोरंजक साबित होगी। निश्चय ही इनका सम्बन्ध एक दूसरे से विपरीत होगा। जहाँ विनाशक साधनो की संख्या कम है, वहाँ संयमशीलता अधिक पाई जायगी। एक, दूसरे की पूर्ति करती है।

हठात् हम एक दूसरे नतीजे पर भी पहुँचते हैं। पर मै इसे अभी स्पष्ट रूप से रखने मे समर्थ नही हूँ। यही कि, मनुष्य-संख्या के घटने की चिंता करना, उसका हिसाब लगाते बैठना ठीक नही है। केवल प्रेम ही श्रेष्ठ मार्ग है। पर पवित्रता को

छोड़कर प्रेम कभी अकेला रहता ही नहीं। हम एक ऐसे आदमी की कल्पना करते हैं जो जन-संख्या को बढ़ाना भी चाहता है और घटाना भी। एक साथ ही चित्त मे दोनो विकारो का होना असंभव है। एक उपाय है। एक प्राणी की जान निकाल कर उसी समय दूसरा उत्पन्न करना होगा। क्या यह हो सकता है ?

एक बात साफ़ है। "अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन" यह पूर्णता पहले पवित्रता और बाद प्रेम में निवास करती है। पहला नतीजा है पवित्रता, दूसरा जाति की रक्षा।

* * * * *

एन् अपने एक दूसरे पत्र मे लिखता है कि विषयभोग पवित्र कार्य है क्योंकि इससे वंश-वृद्धि होती है। इस पर मै यह सोच रहा हूँ कि जिस प्रकार अन्य प्राणियों के साथ साथ मनुष्य को भी जीवन कलह के नियम के सामने सिर झुकाना पड़ता है, उसी प्रकार उसे पुनर्जनन के क़ानून के सामने भी अन्य प्राणियों की भाँति अपना मस्तक नवाना पड़ता है।

पर मनुष्य, मनुष्य है। उसका कलह के विपरीत अपना एक भिन्न कानून है—प्रेम। इसी प्रकार पुनर्जनन के विपरीत भी उसका अपना एक उच्चतर नियम है—ब्रह्मचर्य-संयम।

* * * * *

'अपने माता-पिता बीवी–बच्चे आदि को छोड़ कर मेरा अनुसरण कर' इन शब्दो का अर्थ तुमने ग़लत समझा है। जब मनुष्य के चित्त मे धार्मिक और पारिवारिक कर्तव्यों के बीच

युद्ध छिड़ जाय तब समझौते की शर्तें बाहर से नहीं पेश की जा सकती। बाहरी नियम या उपदेश कोई काम नहीं कर सकते इनको तो मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार खुद ही सुलझाना चाहिए। आदर्श तो वही रहेगा,' अपनी पत्नी को छोड़ मेरे पीछे चल। पर यह बात तो केवल वह आदमी और परमात्मा ही जानता है कि इस आदेश का पालन वह कहाँ तक कर सकता है।

तुम पूछते हो, अपनी पत्नी को छोड़ने के माने क्या होते हैं क्या इसके मानी यह है कि इसे "त्याग दो, इसके साथ सोना बन्द कर दो, संतानोत्पत्ति न करो ?"

हाँ, स्त्री को छोड़ने के मानी यही है कि हम उससे पतित्व का रिश्ता तोड़ दे। संसार की अन्य स्त्रियों की तरह अपनी बहन की तरह, उसे समझे। यह आदर्श है। पर इसकी पूर्ति इस तरह करनी चाहिए जिससे उसे (पत्नी को) * क्षोभ न होने पावे, उसकी राह न रुक जाय, प्रलोभन और अनीतिमय जीवन की ओर वह न बह जाय। यह महा कठिन कार्य है। संयम-शील, जीवन की ओर बढ़ने वाला प्रत्येक पुरुष अपने ही द्वारा पहुँचाये गये इस घाव को भरने की कठिनाई को महसूस करता है। मैं तो केवल एक ही बात सोच और कह सकता हूँ। विवाह हो जाने पर भी पाप को बढ़ने का मौका न देते हुए अपनी शक्ति

---

* अवश्य ही संयमशील जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा रखने वाले प्रत्येक पुरुष और स्त्री के लिए भी टाल्स्टाय की यही सिफ़ारिश है।

भर और जीवन भर अविवाहित संयमशील जीवन व्यतीत करने की कोशिश करना चाहिये।

❀ ❀ ❀ ❀

संयम, बस, संयम ही सब कुछ है। संयम-शक्ति का विकास सब से अधिक महत्व रखता है। जिस क्षण लोग ब्रह्मचर्य-संयम में कल्याण का दर्शन कर लेंगे, बस, उसी क्षण विवाह-प्रथा बन्द हो जायगी।

❀ ❀ ❀ ❀

जीवन को सुखमय बनाने के खयाल से ही यदि कोई शादी करेगा तो उसे कदापि अपने उद्देश में सफलता न मिलेगी। अन्य सब बातों को अलग रखके, केवल विवाह को—प्रियतम व्यक्ति के साथ सम्मिलन को—ही जीवन का लक्ष्य बना लेना ग़लती है। आदमी यदि विचार करे तो उसे यह ग़लती नजर भी आ सकती है। जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या विवाह है? अच्छा, आदमी शादी करता है। तब क्या? यदि उन दोनो को जीवन मे कोई महत्वाकांक्षा नहीं है तो उसे उत्पन्न करना या ढूँढ़ना अत्यंत कठिन ही नहीं, पर असंभव होगा। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यदि दोनो के जीवन में विवाह के पूर्व साधर्म्य नहीं हैं तो विवाह के बाद उनका दिल मिलना असंभव है। वे शीघ्र ही एक दूसरे से दूर होने लगेंगे। विवाह तभी सुखकर होता है जब दोनो के जीवन का लक्ष्य एक ही होता है।

दो व्यक्ति एक ही रास्ते पर मिलते हैं और कहते हैं—"चलो,

हम साथ साथ चले चलें।" बहुत अच्छा। दोनो एक दूसरे को सहारा देते है और अपना रास्ता तय करते हैं।

पर जब वे अपने अपने रास्ते पर मुड़ते हैं तब हृदय मे पारस्परिक आकर्षण होने पर भी वे एक दूसरे की सहायता नहीं कर सकते। इसका कारण यही है कि लोगों की ये धारणायें गलत है कि जीवन अश्रुपूर्ण घाटी है अथवा जैसा कि अधिकांश लोग समझते है कि यौवन, स्वास्थ्य और संपत्ति के होने पर वह एक सुख का स्थान है।

यथार्थ मे जीवन सेवा का क्षेत्र है। इसमें मनुष्य को कई बार असीम कष्ट सहने पड़ते है। पर साथ ही आनंद भी कई प्रकार का मिलता है। मनुष्य को जीवन मे सच्चा आनंद तभी प्राप्त होता है जब वह अपने जीवन को सेवामय बना लेता है। अपने व्यक्तिगत सुख को छोड़ कर जब वह ससार मे किसी उद्देश को स्थिर कर लेता है। अक्सर विवाह करने वाले इस बात की ओर ध्यान नही देते। विवाहित जीवन मे और पितृ-पद प्राप्त करने पर कितने ही आनंद के प्रसंग आते जाते रहते हैं। मनुष्य सोचता है—जीवन और क्या है। इससे कुछ भिन्न थोड़े ही है। पर यह भयंकर भूल है।

जीवन मे किसी ध्येय को बिना ही स्थिर किये यदि माता-पिता जीये और बच्चे पैदा करते रहें तो कहना होगा कि वे इस प्रश्न को आगे ढकेल रहे हैं कि जीवन का उद्देश क्या है। साथ ही वे इस बात को भी जानने से इन्कार करते है कि जीवन के लक्ष्य का बिना ही ध्यान किये रहने का क्या फ़ल होता है।

वे इस महत्वपूर्ण प्रश्न को भले ही आगे ढकेल दें, पर टाल तो कदापि नहीं सकते क्योंकि अपने और बच्चों के जीवन का कोई ध्येय निश्चित न करने पर भी उन्हें उनको सुशिक्षित तो ज़रूर करना ही होगा। इस हालत मे माता-पिता अपने मनुष्योचित गुणों को और उनसे उत्पन्न होने वाले सुख से हाथ धो बैठते हैं और केवल बच्चे बढ़ाने वाली कल बन जाते हैं।

और इसीलिए विवाह की इच्छा करने वाले लोगों से मै कहता हूँ कि अभी आपके सामने विशाल जीवन पड़ा हुआ है। इसलिये आप सब से पहले अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर ले। और इस पर प्रकाश डालने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह उस तमाम परिस्थिति का विचार और निरीक्षण कर ले जिसमें कि वह रहता है। जीवन मे कौन सी चीज़ महत्वपूर्ण है, कौन सी व्यर्थ है, इस विषय मे यदि उसने पहले भी कोई विचार किया हो तो उसको भी पूरी तरह जॉच ले। वह यह भी निश्चय कर ले कि वह किसमें विश्वास करता है अर्थात् वह किस बात को शाश्वत सत्य मानता है और किन सिद्धान्तो के अनुसार वह अपने जीवन को घड़ना चाहता है। इन बातों का केवल विचार और निश्चय ही करके वह न ठहरे। उन पर अमल करना भी शुरू कर दे। क्योंकि जब तक मनुष्य किसी सिद्धान्त पर अमल करने नहीं लग जाता तब तक वह यह नहीं जान पाता कि वह उसमे सचमुच विश्वास भी करता है या नहीं। तुम्हारी श्रद्धा को मैं जानता हूँ। इस श्रद्धा के जिन अंगो पर तुम अमल कर सको, अभी से उन पर अमल करना शुरू कर दो।

यही उसके लिए सब से योग्य समय है। यह विश्वास और श्रद्धा अच्छी है कि मनुष्यो पर प्यार करना चाहिए और उनका प्रेम-पात्र बनना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं तीन प्रकार से सतत प्रयत्न करता रहता हूँ। इसमें अति की शंका ही न होनी चाहिए। और यही तुम्हें भी इस समय करना चाहिए।

दूसरे पर प्यार करना और प्रेम-पात्र बनना सीखना हो तो मनुष्य को सब से पहले यह सीखना चाहिए—दूसरो से अधिक आशा न करो। जितनी हो सके अपनी आशा—कामनाओ को घटा दो। यदि मै दूसरे से अधिक अपेक्षा करूँगा तो मुझे उनकी पूर्ति का अभाव भी बहुत अखरेगा। फिर मै प्रेम करने की ओर नही, दोष देने की ओर झुकूँगा। अतः इस विषय मे बहुत कुछ सावधानी और तालीम की आवश्यकता है।

दूसरे, केवल शब्दो से नही, कार्य द्वारा प्यार करना सीखना चाहिए। अपने प्रियतम की किसी न किसी प्रकार उपयोगी सेवा करना सीखना आवश्यक है। इस क्षेत्र में और भी अधिक काम है।

तीसरे, प्यार करने की कला सीखने के लिए मनुष्यो को शांति और नम्रता के गुणो को धारण करना चाहिए। इसके अलावा उनके लिए असुखकर वस्तुओ तथा मनुष्यो के असुख-कर प्रभावो को सहन कर लेने की क्षमता धारण कर लेना भी परमावश्यक है। अपने व्यवहार को ऐसा बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिससे किसी को कोई क्लेश न हो। यदि यह असंभव दिखाई दे तो कम से कम हमे किसी का अप-

मान तो कदापि न करना चाहिए। हमेशा यह प्रयत्न रहे कि मेरे शब्दों की कटुता जहाँ तक सम्भव हो, कम हो जाय। इसके अलावा हमे और भी कई काम करने होंगे। अब तो सुबह से शाम तक काम ही काम बना रहेगा। और यह कार्य होगा—आनंद-मय। क्योकि प्रतिदिन हमें अपनी प्रगति पर खुशी होती रहेगी। अब हमें शनैः शनैः लोगो के प्रेमभाव के रूप मे इसका आनन्द-दायक पुरस्कार भी मिलने लगेगा।

इसलिए मैं तुम दोनों को सलाह दूँगा कि जितनी गंभीरता के साथ हो सके, विचार करो और अपने जीवन को गम्भीर बनाओ। क्योंकि ऐसा करने ही से तुम्हें पता लगेगा कि तुम एक ही राह के पथिक हो या नहीं। साथ ही तुम्हे यह भी मालूम हो जायगा कि तुम दोनो को विवाह करना उचित है या नहीं। गम्भीर विचार और जीवन द्वारा तुम अपने को अपने उद्देश के नजदीक भी ले जा सकोगे। तुम्हारे जीवन का उद्देश यह न हो कि तुम विवाह कर विवाहित-जीवन का आनन्द लूटो। बल्कि यह हो कि अपने निर्मल और प्रेममय जीवन द्वारा संसार मे प्रेम और सत्य का प्रचार करो। विवाह का उद्देश ही यह है कि पति-पत्नी एक दूसरे को इस उद्देश की पूर्ति मे आगे बढ़ने में सहायता करें।

सिरे ही मिल सकते हैं। सब से अधिक स्वार्थी और अपराध्य जीवन उन व्यक्तियो का होता है जो केवल जीवन का आनन्द लूटने के लिए सम्मिलित होते है। इसके विपरीत सर्व श्रेष्ठ जीवन उन स्त्रियो और पुरुषो का होता है जो संसार मे सत्य

और प्रेम के प्रचार द्वारा परमात्मा की सेवा करने के लिए जीते और वैवाहिक रीति से सम्मिलित होते है।

देखना कही गफ़लत न हो। दोनों रास्ते यो तो एक से ही दीखते है, पर हैं बिलकुल जुदे जुदे। मनुष्य सर्वोत्कृष्ट रास्ते को ही क्यो न चुने? अपनी सारी आत्मा उसमे डाल दो। थोड़ी-सी संकल्प-शक्ति से काम न चलेगा।

* * * * *

बेशक, प्रत्येक चतुर व्यक्ति जिसे अच्छी तरह जीने की इच्छा है, ज़रूर शादी करे। पर 'प्रेम' करके नही, हिसाब लगा कर उसे शादी करनी चाहिए। स्पष्ट ही इन दो शब्दो का वह अर्थ न लगाना जो कि प्रचलित है।

अर्थात् वैषयिक प्रेम की पूर्ति के लिए नही, बल्कि इस बात का हिसाब लगा कर मनुष्य को शादी करनी चाहिए कि मेरा भावी साथी मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने मे मुझे कहाँ तक सहायक या बाधक होगा।

* * * * *

भाई, सब बाते छोड़ दो। शादी करने के पहले बीस नही, सौ बार, अच्छी तरह पहले विचार कर लो। एक नीतिमान् व्यक्ति के लिए विषय-जाल मे पड़ कर शादी कर लेना अत्यन्त हानिकर है। मनुष्य को उसी प्रकार शादी करनी चाहिए जैसा कि वह मृत्यु को प्राप्त होता है। अर्थात् जब कोई मार्ग ही न रह जाय तभी वह शादी करे।

* * * *

मृत्यु के दूसरे नंबर मे, समय की दृष्टि से, विवाह के समान अपरिवर्तनीय और महत्वपूर्ण और कोई वस्तु नहीं। मृत्यु के समान विवाह भी वही अच्छा है, जो अनिवार्य हो। अकाल मृत्यु के समान अकाल-विवाह भी बुरा होता है। वह विवाह बुरा नही, जिसे हम टाल ही नहीं सकते।

*   *   *   *

विवाह को टालने की गुंजाइश होते हुए भी जो शादी करते हैं, उनकी तुलना मैं उन लोगों से करता हूँ जो ठोकर खाने के पहले ही ज़मीन पर लोट जाते हैं। यदि मनुष्य सचमुच गिर पड़े तो कोई-उपाय भी नही रह जाता। पर ख्वामख्वाह क्यो गिरा जाय ?

*   *   *   *

विवाह का प्रश्न वास्तव मे इतना सरल नही जितना कि दीख पड़ता है। 'प्रेम' करना एक ग़लत रास्ता है। पर विवाह विषयक गहरे विचारो मे पड़ जाना दूसरा विमार्ग है। आप कहते हैं—मनुष्य को पहली ही लड़की से शादी कर लेनो चाहिए, अर्थात् मनुष्य को अपने सुख का ख़याल छोड़ देना चाहिए, यही न ? तव इसके मानी तो ये हुए कि अपने को भाग्य के हाथों मे सौंप दे और अपनी पसन्दगी को अलग रखकर दूसरे के द्वारा किये गये अपने चुनाव मे ही संतोष मान लें। उलझनो से भरी तथा पापमय अवस्था मे हम अविवेक से नही चल सकते। क्योंकि यदि हम बलपूर्वक अपनी परिस्थिति को तोड़ने की कोशिश करने

लगें तो दूसरो को कष्ट पहुँचता है, पर यदि भावुकता आदमी को एक उलझन मे डालती हो तो कोरी सिद्धान्त-प्रियता मनुष्य को इस प्रश्न के और भी जटिल हिस्से में पहुँचा देगी। सब से सरल उपाय तो यह है कि मनुष्य को किसी मध्यवर्ती पदार्थ को अपना ध्येय या उद्देश न बनाना चाहिए; बल्कि हमेशा श्रेष्ठ सदाचारयुक्त जीवन को ही अपना ध्येय बनाये रखना चाहिए और उसकी ओर शांतिपूर्वक क़दम बढ़ाते जाना चाहिये। ऐसा करने से निश्चय ही एक समय ऐसा आवेगा और संयोगो का एकीकरण भी इस तरह होगा कि मनुष्य के लिए अविवाहित रहना असंभव हो जायगा। यह मार्ग अधिक सुरक्षित है। इसके अवलम्बन से न तो मनुष्य ग़लती ही करेगा और न पाप का भागीदार ही हो सकता है।

* * * *

विवाह के विषय मे लोकमत तो जाहिर ही है। "यदि आजीविका के साधनो को बिना ही प्राप्त किये लोग शादियाँ करने लग जायँ तो दो चार साल के अंदर ही दारिद्र बच्चे और कष्टो की फसल आने लगेगी। दस बारह साल के बाद कलह, एक दूसरे के दोषो को ढूँढ़ना और प्रत्यक्ष नरक का निवास उस परिवार मे हो जायगा। समष्टिरूप से यह परम्परागत लोकमत बिलकुल ठीक है। यदि विवाह करने वालो का कोई दूसरा अदरूनी हेतु न हो जो कि उनके आलोचको को ज्ञात न हो, तब तो उसका भविष्य-कथन भी सच्चा सच्चा साबित होता है। यदि

ऐसा कोई उद्देश हो तब तो अच्छा है। पर उसका केवल बुद्धि-गत होना ही काफ़ी नही, कार्य मे, जीवन में भी परिणत होना आव-श्यक है। मनुष्य को अपने जीवन में इसकी पूर्ति के लिए एकसी व्याकुलता होनी चाहिए। यदि यह उद्देश है तब तो ठीक है, वे लोकमत को गलत सिद्ध कर सकेंगे। अन्यथा उनका जीवन अवश्य ही दुःखमय सिद्ध हुए बिना न रहेगा।

* * * * *

तुम्हारा सम्मिलन दो कारणों से हुआ है। एक तो अपने श्रद्धा—विश्वास—के और दूसरे प्रेम के कारण। मेरा तो खयाल है इनमे से एक भी काफ़ी है। सच्चा सम्मिलन सच्चे निर्मल प्रेम में है। यदि यह सच्चा प्रेम हो और उससे भावुक प्रेम भी उत्पन्न हो गया हो तब तो वह और भी अधिक मज़बूत हो जाता है। यदि केवल भावुक प्रेम ही हो तो वह भी बुरा नही है। यद्यपि उसमे अच्छाई तो कुछ भी नही है, फिर भी यह एक धकने योग्य बात है। निश्चय स्वभाव और महान् यत्नों के बल पर मनुष्य ऐसे प्रेम से भी काम चला लेता है। पर जहाँ ये दोनों न हो, वहाँ तो निःसन्देह बड़ी बुरी हालत होती होगी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि मनुष्य अपने साथ बहुत सख्ती करके यह देख ले कि किस प्रेम द्वारा उसका हृदय आन्दोलित हो रहा है।

* * * * *

उपन्यासकार अपने उपन्यासों का अन्त अक्सर नायक-नायिका के विवाह में करते हैं। यथार्थ में उनको विवाह से अपना उपन्यास शुरू करना चाहिए और अन्त विवाह-बन्धनो को तोड़ने

मे, ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करने का आदर्श पेश करके करना चाहिए। नहीं तो मानव-जीवन का चित्र खींचकर विवाह तक समाप्त करना ठीक ऐसा ही भद्दा मालूम होता है जैसा कि एक मुसाफ़िर की पूरी मुसाफ़िरी का वर्णन कर जहाँ चोर उसे लूटने लगे वहीं कहानी को छोड़ दे।

धर्म-ग्रन्थ मे विवाह की आज्ञा नहीं है। उसमे तो विवाह का अभाव ही है। अनीति, विलास, तथा अनेक स्त्री-संभोग की कड़े से कड़े शब्दो मे निन्दा अलबत्ते की गई है। विवाह-संस्था का तो उसमे उल्लेख भी नहीं है। हाँ, पादड़ीशाही ज़रूर उसका समर्थन करती है। जचियस का आगमन जिस तरह करो का समर्थन करता है उसी तरह काना का बेहूदा चमत्कार भी विवाह-संस्कार का समर्थन करता है।

❀ ❀ ❀ ❀

हाँ, मेरा खयाल है कि विवाह-संस्था ईसाई-धर्म की संस्था नहीं है। ईसा ने कभी शादी नहीं की। न उसके शिष्यो ने कभी विवाह किया। उसने विवाह की स्थापना भी तो नहीं की। बल्कि लोगो से उसने, जिनमे से कुछ विवाहित थे और कुछ अविवाहित, यही कहा था कि वे अपनी पत्नियो की अदला-बदल (तिलाक) न करे जैसा कि मूसा के कानून के अनुसार वे कर रहे थे। (मेथ्यू अध्याय ५) अविवाहित लोगो से उसने कहा था कि वे यथासम्भव शादी न करे। (मेथ्यू अध्याय १९ पद्य १०-१२) और सर्व साधारण से आमतौर पर उसने यही कहा था कि वे स्त्री-जाति को अपनी भोग-सामग्री न समझे। (मैथ्यू अध्याय ५

पद्य २८) कहने की आवश्यकता नहीं कि यही स्त्रियों को भी पुरुषो के विषय मे समझना चाहिए।

उपर्युक्त कथन से हम नीचे लिखे अमली नतीजो पर पहुँचते है।

जनता मे यह धारणा फैली हुई है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को विवाह अवश्य करना चाहिए। इस धारणा को त्याग कर स्त्री-पुरुषो को यह मानना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री वा पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी पवित्रता की रक्षा करे जिससे अपनी तमाम शक्तियो को परमात्मा की सेवा मे अर्पण करने मे उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न हो।

किसी भी स्त्री वा पुरुष का पतन (शरीर-सम्बन्ध) केवल एक ग़लती न समझी जाय जो किसी दूसरे व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) के साथ विवाह कर लेने पर सुधर सकती है। न वह अपनी आवश्यकताओ की क्षय-पूर्ति ही समझी जाय। बल्कि किसी भी व्यक्ति का अन्य स्त्री या पुरुप के साथ शारीरिक सम्वन्ध होते ही वह सम्वन्ध एक अटूट विवाह-बन्धन का द्वार ही समझा जाय। (मैथ्यू अध्याय १८ पद्य ४-६) जो उन व्यक्तियो पर अपने पाप से मुक्त होने के लिए एक कर्तव्य का गम्भीर, आदेश कर देता है।

विवाह अपनी वैषयिकता के प्रशमन करने का एक साधन नही, बल्कि एक ऐसा पाप समझा जाय जिससे मुक्त होना परमावश्यक है।

इस पाप से इस तरह मनुष्य की मुक्ति हो सकती है—पति

और पत्नी दोनो अपने को विलासिता और विकार से मुक्त करने की कोशिश करें और इसमे एक दूसरे की सहायता भी करें तथा आपस मे उस पवित्र सम्बन्ध की स्थापना करने की कोशिश करें जो भाई और वहन के वीच होता है, न कि प्रिया और प्रेमी के वीच। दूसरे, वे अपनी सारी शक्ति इस विवाह से होने वाले अपने बच्चो को सुशिक्षित और सुसंस्कृत वनाने मे लगा दें। बस, यह उस पाप से मुक्ति पाने का मार्ग है।

इस विचार-शैली मे और विवाह के विषय मे समाज मे जो कल्पना प्रचलित है, उसमे महान् अंतर है। लोग शादियाँ करते ही रहेंगे। माता-पिता भी अपने लड़के-लड़कियो के विवाहादि बरावर निश्चित करते रहेंगे। पर यदि विवाह का दृष्टिकोण वदल जायगा तो इसमे महान् अंतर हो जायगा। विषय-क्षुधा को शांत करने, ससार मे सर्वश्रेष्ठ आनद मानकर विवाह करने, और उसे अनिवार्य पाप समझ कर विवाह करने मे महान् अतर है। पवित्र हृदय वाला मनुष्य तो तभी शादी करेगा जव उसके लिए अविवाहित रह कर पवित्र वने रहना असंभव हो जायगा। विवाह करने पर भी वह विकार का दास नही वनेगा; वल्कि अपने को उससे मुक्त करने की सतत चेष्टा करता रहेगा। अपने बालको के आध्यात्मिक कल्याण का ख़याल रखने वाले माता पिता अपने प्रत्येक लड़के-लड़की की शादी करना अनिवार्य न समझेंगे; वल्कि उनकी शादी तभी करेंगे, अर्थात् उनके पतन को भीषण होने देने से रोकेंगे और उन्हे शादी की सलाह देंगे, जब वे देख लेंगे कि उनके लड़के या लड़कियाँ अव अपने को पवित्र नही वनाये रख

सकते; जब वे देख लेंगे कि वे विवाह किये बिना रही नहीं सकते। विवाहित स्त्री-पुरुष अभी की भाँति अधिक बच्चों की इच्छा नहीं करेंगे, बल्कि पवित्र जीवन व्यतीत करने की कोशिश करते हुए यदि एक दो बच्चे हो भी जावेंगे तो खुश होंगे। साथ ही वे अपनी तमाम शक्ति, अपना अधिकांश समय अपने और अपने पडोसियों के बच्चों को, ईश्वर के भावी सेवकों को, सुसंस्कृत बनाने में लगावेंगे। क्योंकि यह भी ईश्वर ही की तो सेवा है।

उनमें और विवाह को आनद का साधन मानने वालों में वही भेद होगा जो जीवन-निर्वाह के लिए खाने वालो मे और खाने के लिए जीने वालों मे होता है। एक वर्ग इसीलिए अन्न खाता है कि बिना अन्न के जीवन-यात्रा तय करना असम्भव है। इसलिए वे खाने को एक गौण वस्तु, गौण कर्तव्य, समझ कर यथा सम्भव उसके लिए अपना थोड़ा समय, थोड़ी शक्ति और थोड़ा विचार ही देते हैं। दूसरा वर्ग तो खाने के लिए ही जीता है। भिन्न भिन्न प्रकार के व्यजन बनाने मे, उनका आविष्कार करने मे, अपना समय और शक्ति खर्च करता है। भूख के बढ़ाने, अधिक अन्न पेट में भरने आदि के नाना प्रकार के उपायों को खोजता है, जैसा कि इटली के लोग करते थे।*

ईसाई-धर्म के अनुसार न तो कभी विवाह हुआ है और न हो ही सकता है। क्योंकि धर्म विवाह की आज्ञा ही नहीं

---

* बिलकुल यही बात आज कृत्रिम उपायों द्वारा गर्भाधान को रोकने वाले लोग भी कर रहे हैं।

करता। जैसा कि वह धन-संचय करने का भी आदेश नहीं करता। हाँ, इन दोनों का सदुपयोग करने पर अलबत्ता वह ज़ोर देता है।

एक सच्चा ईसाई अपनी सम्पत्ति के विषय में इस तरह विचार करेगा—यद्यपि मैं अपने कुर्ते को अपना समझता हूँ तथापि यदि कोई उसे मुझसे माँगे, तो मैं अपना कुर्ता दूसरे को दे देना आवश्यक मानता हूँ। उसी प्रकार वह विवाह के विषय में भी सोचता है। उसका प्रयत्न दो दिशाओं में रहता है। एक तो अपने बच्चों को सुसंस्कृत करने की ओर, और दूसरे परस्पर को विकार रहित करने की ओर अर्थात् शारीरिक प्रेम की बनिस्बत आध्यात्मिक प्रेम करने की ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक होती है।

अगर आदमी केवल यह स्पष्ट रूप से समझ ले कि विषयोप-भोग एक नैतिक पतन है, पाप है और एक स्त्री के साथ किया हुआ पाप दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लेने पर धुल नहीं जाता, बल्कि वही एक अपरिवर्तनीय विवाह-बंधन है जो उसे पाप से मुक्त कर सकता है तो अवश्य ही मनुष्य-जाति में संयम की मात्रा बढ़ जायगी।

जब मैं यह कहता हूँ कि विवाहित मनुष्यों को अमुक अमुक रीति से रहना चाहिए, तब मेरा उद्देश कदापि यह बतलाना या सिद्ध करना नहीं होता कि मैं खुद इस तरह से रहा हूँ या रह रहा हूँ, बल्कि इसके विपरीत मैं इस बात को अपने अनु-भव से जानता हूँ कि मनुष्य को कैसे रहना चाहिए, क्योंकि मैं खुद इस तरह रहा हूँ जैसे कि आदमी को न रहना चाहिए।

अत. अब तक मैं जो कुछ कह गया हूँ, इसमें से एक शब्द भी वापिस लेना नहीं चाहता ? वल्कि इसके विपरीत मैं उस पर और भी जोर देना चाहूँगा। हाँ, उसके जरा समझा देने की अवश्य कुछ जरूरत इसलिए है कि हमारा जीवन ईसा के बताये वास्तविक जीवन से इतना भिन्न और विपरीत है कि इस विषय में यदि हमे कोई सत्य सत्य कह देता है तो हम सहसा चौंक उठते हैं। (मैं यह अपने अनुभव से कहता हूँ) इस तरह चौंकते हैं जैसा कि वह धन बटोरने वाला वनिया चौंक पड़ता है जिसे यह कह दिया जाय कि अपने परिवार के लिए या गिरजाघरों में घंट लगाने के लिए * धन एकत्र करना पाप है, और जिस मनुष्य को पाप से छुटकारा पाने की इच्छा हो वह अपनी सारी धन दौलत सत्पात्रों को दान कर दे।

इस विषय में मेरे जो विचार हैं वे विना किसी प्रकार के क्रम की परवा किये जैसे आते जा रहे हैं, लिखे देता हूँ।

प्रेम—वैषयिक प्रेम—एक ज़बरदस्त शक्ति है। यह दो भिन्न या असमान लिंग के व्यक्तियों में उत्पन्न होती है, जो सम्मिलित (विवाहित) नहीं हुए हैं। यह विवाह की ओर उन्हे ले जाता है। और विवाह का फल है संतान। गर्भ के रहते ही पति और पत्नी के बीच का यह आकर्षण शिथिल हो जाता है। यह विलकुल

---

* नित्य भले बुरे उपायों से धन एकत्र कर कई सेठ साहूकार उसका एक आध नगण्य हिस्सा धर्म-कार्य में लगा देते हैं, और अपने को कृतार्थ मानते हैं। यही बात रूस के धनिक भी करते हैं।

स्पष्ट है। यह शिथिलता सम्मिलन के प्रति होने वाली उत्सुकता को मिटा देती है जैसा कि अन्य प्राणियो मे भी पाया जाता है। यदि पुरुष विषयोपभोग के लिए अपना अधिकार जताना छोड़ दें तो इसका वड़ा अच्छा परिणाम हो सकता है। अव इस भोगौत्सुक्य का स्थान वह इच्छा लेती है जो अक्सर माता-पिता के हृदय मे संतान-वृद्धि के लिए होती है, जिसे हम दूसरे शब्दों में वत्सलता या सन्तान-प्रीति कह सकते है। यह तव तक वरावर रहती है जव तक कि वच्चा दूध पीना नहीं छोड़ देता। तव फिर वही पारस्परिक प्रेमाकर्पण शुरू होता है।

यह है स्वाभाविक परिस्थिति। भले ही हम इस वास्तविक और प्राकृतिक अवस्था से कितनी ही दूर हों; पर होना चाहिए यही। इसका कारण सुनिए। सव से पहले, स्त्री गर्भावस्था मे दूसरा गर्भ धारण नही कर सकती। जव गर्भ धारण ही न हो तव तो विषयोपभाग के लिए सच पूछें तो मनुष्योचित विवेकयुक्त कारण ही नही रहता। वह तो नीच विषय-वासना की तृप्ति मात्र कही जा सकती है जो कि प्रत्येक विवेकशील पुरुप की नज़र मे अवश्य ही हेय है। वह तो एक घोर से घोर अनीति से भरा हुआ पाप है। जो मनुष्य इस पाप के अधीन अपने को कर देता है वह पशु से भी गया वीता हो जाता है। क्योकि यह तो पाप की तरक़्क़ी करने मे अपनी वुद्धि का भी उपयोग करता है। दूसरे इस वात को तो प्रत्येक आदमी मानता है कि विपयोपभोग मनुष्य की शक्ति को हरण कर लेता है। और उस शक्ति को हरता है जो सर्वश्रेष्ठ और सव से अधिक आवश्यक है—आध्या-

त्मिक। इस आदत के कुछ समर्थक कहेंगे—कुछ नियमशीलता से क्यो न काम लिया जाय? पर बात यह होती है कि एक बार विवेक को छोड़ देने पर नियम का मनुष्य को ख़याल ही नहीं रहता। पर संभव है, यदि नियम या समय से काम लिया जाय तो आदमी को इतना नुक़सान न उठाना पडे (राम राम ! इस पाशविकता को हम संयम कह भी सकते हैं ?) पर भाई पुरुष का यह संयम उस बेचारी स्त्री के लिए घोर दुखदायी असंयम साबित होता है, जो या तो गर्भवती होती है या बच्चे को दूध पिलाती है।

मेरा ख़याल है कि स्त्रियों के पिछड़ने और उनके चिड़चिड़ेपन का भी यही प्रधान कारण है। इससे स्त्रियो को छुडाकर उनकी मुक्ति करने की ज़रूरत है। पुरुषों के साथ उनका ऐक्य हो जाना आवश्यक है। शैतान की नहीं, परमात्मा की सेविका उन्हें बना देना ज़रूरी है। यह एक दूरवर्ती आदर्श है, पर है महान्। और क्यों न मनुष्य इसके लिए प्रयत्न करे ?

मैं सोचता हूँ कि विवाह इस तरह का हो। स्त्री और पुरुष तभी एकत्र हों जब प्रेम के द्वारा वे इस तरह आकर्षित हो जायँ कि उनके लिए अलग अलग रहना असंभव हो जाय। बच्चा पैदा होने पर वे उन तमाम प्रलोभनों और शारीरिक आकर्षणो से दूर रहे जो उनके बच्चे के संवर्धन में हानिकर प्रतीत हो। आज कल की तरह उलटे कृत्रिम प्रलोभनो को पैदा न करें, बल्कि आपस मे भाई और बहन की तरह रहे।

आजकल तो यह होता है। पहले ही से बिगड़ा हुआ पति अपनी बुरी आदतें अपनी पत्नी मे उत्पन्न कर देता है। उसी वैप-

यिकता के विष से वह अपनी पत्नी को विषाक्त कर देता है और उस पर एक साथ ही अपनी दासो, श्रान्त माता और बीमार, चिड़चिड़ी तथा पगली स्त्री होने का असह्य बोझ डाल देता है। पति उसे अपनी स्त्री की हैसियत से मतलब के समय प्यार करता है। माता को हैसियत से उसकी लापरवाही करता है और अपने ही उत्पन्न किये उसके चिड़चिड़ेपन तथा पागलपन के लिए उसको कोसता है। मेरा खयाल है कि अधिकांश परिवारो मे जो असीम कष्ट देखा जाता है, उसका यही मूल कारण है। इसीलिए पति-पत्नी के भाई-बहन की तरह रहने की कल्पना करता हूँ। स्त्री शान्ति के साथ अपने बालक को जन्म दे, नियमित रूप से उसका अच्छी तरह पोषण करे, और साथ ही उसे कुछ कुछ नैतिक शिक्षा भी देती रहे। केवल स्वाधीन और उपयोगी समय में ही वे एक दूसरे के साथ एकान्त में मिलें और फिर उसी प्रकार शान्ति युक्त जीवन व्यतीत करें।

मुझे मालूम होता है कि प्यार करना भी एक प्रकार का भाफ का दबाव है, जो यदि सेफ्टीवाल्व यथा समय न खोली जाय, तो जिन को तोड़-फोड़ डाले। वाल्व तभी खुलती है जब उस पर भारी वजन पडता है। अन्य समय वह मजबूती से बन्द रहती है। हमारा उद्देश भी यह हो कि हम उसे जान बूझकर बन्द रखे रहे। और उसे आसानी से खुलने न देने के लिए उस पर खूब वजन रख दे। मै उन शब्दो को इस अर्थ मे समझता हूँ कि जो इसको प्राप्त कर सकता है, करे। (मैथ्यू १८ अध्याय पद्य १२) अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को कोशिश करनी चाहिए कि वह अविवा-

हित रहे। पर विवाह कर लेने पर वह अपनी पत्नी के साथ बहन का सा व्यवहार रक्खे। भाफ़ ज़रूर ही इकट्ठी होगी। वाल्व उठेगी। पर हमे उसे स्वयं ही न खोलना चाहिए जैसा कि विषयोपभोग को क़ानूनी अधिकार समझने वाला आदमी करता है। वह तभी क्षम्य है जब हम उसका संयम न कर सके। जब वह हमारी इच्छा के विपरीत टूट पड़ता है।

"पर मनुष्य इस बात का निर्णय कैसे करे कि अब वह अपने को रोक नहीं सकता।"

न जाने कितने ऐसे सवाल हैं, और वे कठिन मालूम होते हैं। पर साथ ही जब मनुष्य उनको अपने लिए, दूसरो के लिए नहीं, हल करने को बैठता है, तब वे उसे इतने कठिन नहीं मालूम होते जितने कि वह उन्हे पहले समझे हुए था। दूसरे के लिए तो उस क्रम से चलना होगा जो कि पहले बता दिया गया है। एक वृद्ध मनुष्य एक वेश्या से प्रीति लगाता है; उसमे एक भयंकर बुराई है। वही बात एक जवान आदमी करता है। यह उतनी बुरी बात नहीं। एक वृद्ध पुरुष का अपनी पत्नी से काम-चेष्टाये करना उतना बुरा नहीं, जितना कि एक युवा पुरुष का एक वेश्या के साथ वैसी चेष्टाये करना है; उसका अपनी स्त्री के साथ काम-चेष्टाये करना उतना बुरा नहीं, जितना कि वही काम एक वृद्ध पुरुष के लिए होगा। हाँ, बुरा तो ज़रूर है। इस तरह न्यूनाधिकता सबके विषय मे होती है। इसे हम सभी जानते हैं। निर्दोष बच्चो और लड़को के लिए भी एक ख़ास तुलना की नाप होती है। पर स्वयं अपने लिए एक जुदी बात है। प्रत्येक ब्रह्म-

चारी पुरुष और स्त्री के मन मे इस कल्पना का अस्तित्व होता है; यद्यपि वह झूठी धारणाओ द्वारा दवी रहती है कि पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए। और इस कल्पना की पूर्ति मे तथा किसी भी हालत मे, विकलता मे उसे बरावर हर्ष या शोक होता रहता है।

अन्तरात्मा की आवाज़ वाद मे और हमेशा यह बरावर कहती रहती है कि वह बुरा है—लज्जास्पद है। (यह तो अनुभूति और समझ पर अवलम्वित है)

संसार मे विषय-सुख वहुत अच्छा समझा गया है जैसे कि सेफ्टी वाल्व को खोलकर भाफ़ के छोड़ देने को लोग समझ सकते है। परमात्मा के नियम के अनुसार तो सच्चा जीवन व्यतीत करना ही अच्छा है। हम अपनी बुद्धि को परमात्मा के लिए ही खर्च करे। अर्थात् मनुष्यो को, उनकी आत्माओ को और उनमे भी सबसे नजदीक अपनी पत्नी को प्यार करे। उसे अपने विकारो की दासी बना कर उसकी ज्ञानेद्रियो को कुंठित न करे। अर्थात् भाफ का सदुपयोग करें और उसे निकाल ने के तमाम रास्तो को टालते रहे, रोकते रहे।

"पर इस तरह तो मनुष्य-जाति का अंत तो जायगा।"

सब से पहले, मनुष्य चाहे कितना ही विषयोपभोग को टालने की कोशिश करता रहे, जब तक उसकी आवश्यकता होगी, सेफ्टी वाल्व बनी ही रहेगी और बच्चे पैदा होते रहेगे। पर हम झूठ क्यो बोलें ? जब हम विषय-सुखो का समर्थन करते है तब

क्या सचमुच हमें मनुष्य-जाति के मिट जाने का डर होता है ? हम तो अपने सुख की बात सोचते हैं। और वही हमें करना भी चाहिए। मनुष्य-जाति मिट जायगी ? नरपशु संसार से उठ जायगा ? राम राम ! कितनी भयंकर बात है ! प्रलय-विरोधी प्राणी नष्ट हो गये। उसी प्रकार नर-पशु भी मिट जायगा। (यदि हम अनतकाल और स्थान का विचार करे तो) भले ही मिट जाय न। मुझे इन दो पैर के पशुओ के संसार से मिट जाने पर कोई दुःख न होगा, जब तक कि संसार मे सच्चा जीवन, सच्चा प्रेम करने वालों का प्रेम, नहीं नष्ट हो जाता। यदि विषय-लालसा को छोड़ देने के कारण मनुष्य-जाति नष्ट हो जाय तो भी यह सच्चा प्रेम तो कदापि नष्ट नहीं हो सकता। वह तो इतना बढ़ जायगा कि इस प्रेम के मानने वालो के लिए मनुष्य-जाति का बने रहना एक अनावश्यक बात हो जायगी। वे उसके रहने-मिटने की परवाह ही न करेंगे।

शारीरिक प्रेम की आवश्यकता केवल इसीलिए है कि यदि वह नष्ट हो जाय तो उन उच्च नरपुंगवो के पैदा होने की सभावना भी नष्ट हो जाय, जो मनुष्य-जाति को प्रेम की इस चरमसीमा तक ले जा सकते हैं।

इन सब अस्तव्यस्त विचारो को पढ़ जाओ और सोचो कि मैं क्या कहना चाहता था और मैंने क्या नहीं कहा। ये विचार यो ही संयोगवश मेरे दिमाग मे नहीं आये हैं। मेरे जीवन-अनुभव के सागर मे धीरे धीरे निर्माण हुए वे मोती हैं, यदि परमात्मा

चाहेगा तो मै उन्हे और भी स्पष्टता के साथ और व्यवस्थित रूप मे प्रकाशित करने की कोशिश करूँगा।

*   *   *   *   *

पशु सभी विषयोपभोग करते हैं, जब सन्तान-उत्पत्ति की सम्भावना हो। पर सभ्य मनुष्य भी विषयोपभोग हमेशा करता है। बल्कि उसने यह आविष्कार किया है कि ऐसा करना आवश्यक है। इसके द्वारा वह अपनी गर्भवती या मातृधर्मरता पत्नी को सताता है और उसे अपनी विषय-वासना तृप्त करने पर मजबूर करता है। पत्नीत्व और मातृत्व दोनो धर्मों का पालन एक साथ करने मे वेचारी मर मिटती है। वस, इस तरह हमने स्त्रियो के मृदुल, शांत और मीठे स्वभाव को अपने हाथो विगाड़ डाला है। फिर ख्वाहम-ख्वाह हम उनकी विचार-हीनता की शिकायत करते हैं या उनके मानसिक विकास के लिए किताबो या विद्यापीठो की सहायता की इच्छा करते हैं। हॉ, इन वातो मे नर-पशु अन्य पशुओ से भी गया वीता है। उसे पशु-जीवन के सतह पर पहले आना चाहिए। यह तभी होगा, जव वह ज्ञान-पूर्वक प्रयत्न करेगा। अन्यथा उसकी बुद्धि का उपयोग तो अपने जीवन को और भी अधिक नष्ट करने की ओर होता रहेगा।

स्त्री और पुरुष को कितना विषयोपभोग करना चाहिए, किस हद तक वह जायज़ है? यह अमली ईसाई-धर्म मे एक बड़ा ही महत्व पूर्ण सवाल है। और वह हमेशा मेरे दिमाग़ मे बना रहता है। पर अन्य प्रश्नो की भाँति धर्म-ग्रन्थ मे उसका उत्तर

साफ़ साफ़ लिखा हुआ है। ईसा ने इसको स्पष्ट कर दिया है। पर हम उस पर अमल ही नही करते; बल्कि यों कहना चाहिए कि भली भाँति उसे समझ भी नही पाते। देखिए मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवे अध्याय मे लिखा है—"सभी आदमी इसे नही ग्रहण कर सकते। केवल वे ही ग्रहण कर सकते है जिन्हे कि वह दिया गया है। क्योकि संसार मे कई जन्मजात नपुंसक हैं। पर कई ऐसे नपुंसक भी है जिन्होने अपने को स्वर्गीय राज्य की प्राप्ति के लिए ऐसा बना रक्खा है। जो उसको ग्रहण कर सकता हो करे।" (पद्य ११ और १२)

इन पद्यो का बहुत गलत अर्थ लगाया गया है। पर इसमे यह साफ साफ़ लिखा है कि मनुष्य को अपने विषय मे क्या करना चाहिए। उसे किस तरफ़ बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए? आधुनिक भाषा में कहना चाहे तो उसका आदर्श क्या हो? उत्तर है "स्वर्गीय राज्य की प्राप्ति के लिए नपुंसक बन जाय।" जिसने यह प्राप्त कर लिया है उसने संसार की सर्व श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त कर लिया पर जो इसे प्राप्त नही कर सका है, उसे भी चाहिए कि इसके लिए कोशिश करे। जो इसे ग्रहण कर सकता है, करे।

मेरा खयाल है कि मनुष्य को अपने पारस्परिक कल्याण के लिए संपूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन की कोशिश करनी चाहिए। दोनों को ज्ञान पूर्वक ब्रह्मचर्य के पालन मे प्रत्यक्ष रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए तब वे उसी लाभ को प्राप्त करेंगे जो कि उनको होना चाहिए। लक्ष्य पर ठीक निशाना लगाने के लिए बाण उसके ज़रा ऊपर छोड़ना पड़ता है। यदि मनुष्य विवाहित जीवन

के विषयोपभोग को भी अपने जीवन का लक्ष्य बना लेगा तो वह उससे नीचे गिर जायगा। यदि आदमी पेट के लिए नही बल्कि आत्मा के लिए जीने की कोशिश करेगा तो वह फिसलते फिसलते कही मामूली जीवन पर आकर ठहरेगा। पर यदि वह पहले ही से जिह्वालोलुप हो जायगा तो उसका पतन निश्चित है।

❀ ❀ ❀ ❀

विवाहित जीवन के विषय में मैंने बहुत कुछ सोचा है और सोचता रहता हूँ। किसी भी विषय पर जब मैं गंभीरता से विचार करने लगता हूँ, तब यही होता है। मुझे बाहर से भी प्रेरणा होती है।

परसो मुझे अमेरिका की स्त्री डाक्टर श्री अलाइस स्टॉकहम एम. डी. की लिखी एक पुस्तक डाक द्वारा मिली। पुस्तक का नाम था—"टॉकोलाजी"— हर एक स्त्री की किताब।" स्वास्थ्य की दृष्टि से किताब उत्कृष्ट है। जिस विषय पर इतने दिनो से हमारा पत्र-व्यवहार चल रहा है उस पर भी उसने एक अध्याय मे विचार किया है और ठीक उसी नतीजे पर पहुँची है जिस पर कि हम पहुँचे हैं। जब आदमी अँधेरे मे होता है और उसे एका एक कही से प्रकाश दिख जाता है तो उसे बड़ा आनंद होता है। यह याद आते ही मुझे बड़ा दुःख होता है कि मैंने एक पशु की तरह अपना जीवन बिताया है। पर अब उसका क्या किया जा सकता है? दुःख इसलिए होता है कि लोग तो यही न कहेंगे— "अब कबर मे जाने के दिन आये तब तो बड़ी बड़ी ज्ञान की

बातें करने लग गये। पर आप का पूर्व जीवन कैसा था? जब हम बूढ़े हो जायँगे, तब हम भी यही कहेंगे।" यही आप का पुरस्कार है। मनुष्य की अंतरात्मा कहती है कि अब मैं गया बीता हूँ। परमात्मा के पवित्र संदेश को उसके पुत्रों को सुनाने के लिए मैं सर्वथा अयोग्य हूँ। पर यह विचार आते ही समाधान हो जाता है कि खैर, इससे दूसरों का तो कल्याण होगा। परमात्मा तुम्हारा और सबका कल्याण करे।

*　　*　　*　　*

"अंतिम कथन" के विषय में विचार करते हुए मैं सोचता था कि विवाह के पहले ये मानी थे—पत्नी को अपनी सम्पत्ति के तौर पर प्राप्त करना। फिर युद्ध या डाके डाल कर भी स्त्री प्राप्त की जाती थी। मनुष्य ने स्त्री के विषय में किसी प्रकार का विचार नहीं किया। उसे केवल अपनी विषय-वासना को तृप्त करने का एक साधन मात्र समझा। बादशाहों के जनानखाने क्या हैं? इसी के जीते-जागते उदाहरण! एकगामी होने पर स्त्रियों की संख्या जरूर घट गई, पर उनके संबंध में पुरुष के चित्त में जो गलत कल्पना थी, वह नहीं गई। यथार्थ में सम्बन्ध ठीक इसके विपरीत है। पुरुष हमेशा विषयोपभोग के योग्य रहता है और हमेशा इन्कार भी कर सकता है। पर स्त्री, जब कि वह कुमार अवस्था को पार कर जाती है, और जब कि उसकी प्रकृति पुरुष संयोग की चाह करती है तब उसे अपने को रोकने में बड़ा कष्ट होता है। पर इतनी प्रबल इच्छा उसे दो दो साल में शायद

एक एक बार ही होती है। इसलिए अपनी विषय-वासना को तृप्त करने का यदि किसी को अधिकार हो तो वह पुरुष को कदापि नही, स्त्री को ही है। स्त्री के लिए विषय-वासना की तृप्ति एक मामूली आनन्द नही है, जैसा कि पुरुष के लिए है। बल्कि वह तो उसके दु:ख के हाथो मे अपने को सौप देती है। उसका विषयोपभोग भावी दु:ख, कष्ट और यातनाओ से लदा हुआ होता है। मै सोचता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य इसी दृष्टि से विवाह का विचार करे। वे आपस मे एक दूसरे के प्रति प्रामाणिक रहने की प्रतिज्ञा करें। ब्रह्मचर्य के पालन की कोशिश करे और यदि कही इसका भंग ही होने का अवसर आवे तो वह पुरुष की इच्छा के कारण नहीं, स्त्री के प्रार्थना करने पर ही हो।

*　　*　　*　　*

तुम अपने बच्चो के पिता से अपील करना नहीं चाहती ? यह विचार गलत है। तुम लिखती हो—'मै न चाहती हूँ और न अपील कर ही सकती हूँ।' पर स्त्री और पुरुष का वह सम्बन्ध अटूट है जिसके कारण उन्हे बच्चे पैदा हो जाते हैं। भले ही पादड़ियो के पंचो का संस्कार उन पर हुआ हो या न भी हुआ हो। इसलिए तुम्हारे बच्चो का पिता विवाहित हो या अविवाहित, भला हो या बुरा हो, उसने तुम्हारा अपमान किया हो या न भी किया हो, मेरा खयाल है कि तुम्हे उसके पास जाना चाहिए और यदि उसने लापरवाही की है तो उसे अपने कर्तव्य का परिज्ञान करा देना चाहिए। यदि वह तुम्हारी प्रार्थना पर

विचार न करे, तुम्हे झिड़क दे, तुम्हारा अपमान करे तो भी तुम अपने, अपने बच्चो के और परमात्मा के नजदीक इस बात के लिए जिम्मेदार हो कि तुम उसे फिर हर तरह समझाने की कोशिश करो कि वह अपने भले के लिए अपने कर्तव्य का पालन करे। हाँ, जाओ, जरूर जाओ, प्यार के साथ, जोर के साथ, युक्ति पूर्वक, मधुरता से उसे समझाओ जैसा कि उस विधवा ने समझाया, जिसका जिकर हमारे धर्म-ग्रन्थ मे आया हुआ है। यह मेरा प्रामाणिक विचार और चिंतनपूर्वक दिया हुआ मत है। तुम चाहे इसका अनुसरण करो या इस पर ध्यान न दो। तुम पर इसे प्रकट कर देना मैंने अपना धर्म समझा।

* * * * *

अध्यात्मिक आकर्पण से शून्य स्त्री-पुरुषो का शारीरिक संगम परमात्मा का अपने सत्य को प्रकट करने का प्रयोग है। इस संगम द्वारा वह कसौटी पर चढ़ता है और मजबूत होता है। यदि वह कमजोर होता है तो उसका प्रकाश शनैःशनैः बढ़ जाता है।

* * * *

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। उसमे लिखी शंकाओ का बड़ी खुशी के साथ समाधान करूँगा। ये शंकायें हमारे दिल मे कई बार पैदा होती हैं और वैसी ही रह जाती हैं।

ओल्ड टेस्टामेन्ट और गॉस्पेल मे लिखा है कि पति और पत्नी दो नहीं एक ही प्राणी हैं। यह सत्य है। इसलिए नही कि वे

परमात्मा के वचन समझे जाते हैं, पर वह इस असंदिग्ध सत्य का समर्थन करता है कि स्त्री पुरुषो का वह संयोग अवश्य ही विशेष रहस्य पूर्ण और अन्य सयोगों से भिन्न होगा कि जिसके फल स्वरूप एक नवीन प्राणी पैदा होता है। एक खास अर्थ मे वे दोनो अपनी भिन्नता को भूल जाते हैं, एक हो जाते हैं।

इसलिए मै कहता हूँ कि इस रहस्य-पूर्ण रीति से जो अभिन्न बन गये हैं, उनको संयमशील जीवन के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिए। इनमे से जिस किसी के विचार अधिक सुसंस्कृत हैं वह दूसरे की हर तरह से शक्ति भर सहायता करे। सादा जीवन, अपने प्रत्यक्ष उदाहरण और उपदेशों द्वारा कोशिश करे। पर जब तक दोनो के हृदय मे इस पवित्र इच्छा का उदय नही होता दोनो अपने संयुक्त जीवन के पापो के बोझ को उठावें।

अपनी विकारवशता के कारण हम कई बार ऐसे बुरे-बुरे काम कर डालते हैं जिनकी याद आते ही हमारी अंतरात्मा काँप जाती है, उसी प्रकार यदि हम अपने आपका पृथक विचार न करे, बल्कि विवाहित जीवन के—संयुक्त जीवन के—उत्तरदायित्व का ही विचार करें तो कई बार इसमें भी हम ऐसे ऐसे काम कर जाते हैं जो हमारी व्यक्तिगत आत्मा के सर्वथा प्रतिकूल, नहीं घोर रूप से निन्दनीय, होते हैं। बात यह है कि व्यक्तिगत जीवन की भाँति ही मनुष्य को अपने सयुक्त विवाहित जीवन मे भी सावधानी पूर्वक रहना चाहिए। कभी पाप की उपेक्षा न

करनी चाहिए। बस, एकसा अपनी कमज़ोरियो से झगड़ते रहना चाहिए।

तुम्हारा यह कहना ठीक है कि मनुष्य परमात्मा की प्रतिमा है, इसलिए उसे अपने इस पवित्र शरीर को किसी पापाचरण द्वारा कलंकित न करना चाहिए। पर यह उस संयुक्त जीवन पर नही घटाया जा सकता जिससे या तो बच्चे पैदा हो गये हैं या होने की सम्भावना है। सन्तानोत्पत्ति और उनका पालन-पोषण इस सम्बन्ध के अनौचित्य और बोझ को अधिकांश मे नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन की तपस्या उस पाप को साफ़ साफ़ धो डालती है।

यह प्रश्न करना हमारा काम नही है कि बच्चो का पैदा होना अच्छी बात है या बुरी। जिसने पवित्रता के भंग के पाप को धोने का यह उपाय बताया, वह अपने काम को भली भॉति जानता था।

जरा क्षमा करना, यदि मैं तुम्हे कोई अप्रिय बात कह दूँ। तुम कहते हो कि संतानोत्पत्ति से आदमी अधिकाधिक कमज़ोर हो जाता है। ठीक है। पर तुम्हारा यह ख़याल अत्यंत निष्ठुर और स्वार्थमय है। तुम संसार मे खुशमिजाज और केवल आनन्दी रहने के लिए ही नही आये हो, बल्कि अपने काम को पूर्ण करने के लिए भेजे गये हो। अपने आन्तरिक जीवन सम्बन्धी महत्त्व-पूर्ण कामो के अतिरिक्त तुम्हारा सब से महत्व-पूर्ण काम यह है कि तुम अपने पति की पवित्रता की ओर बढ़ने मे सहायता करो। यदि इस विषय मे तुम उससे आगे बढ़ी हुई हो तो तुम्हारा यहा कर्तव्य है। यदि तुमने खुद ही अपने सुपुर्द किए हुए कार्य को

नहीं किया है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम संसार को ऐसे अन्य प्राणी दो जो उस कर्त्तव्य को पूरा कर सके।

दूसरे, विवाहित व्यक्तियो के बीच कोई सम्बन्ध है तो यह आवश्यक है कि वे दोनो उसमे भाग ले। यदि उनमे से एक अधिक विकारमय है तो दूसरे को स्वभावतः यह मालूम होगा कि वह संपूर्ण रूप से पवित्र है। पर यह सोचना गलत है।

तुम्हारा अपने विषय मे यह सोचना भी मेरे ख़याल से गलत मालूम होता है। केवल अपना पाप तुम्हे दिखाई नही देता जो दूसरे के प्रकट पाप के पीछे छिप जाता है। यदि इस विषय मे तुम अधिक पवित्र होती तो तुम अपने पति की विकार-तृप्ति के विषय में अधिक उदासीन दिखाई देती। तुम उसके साथ ईर्ष्या नहो करती। बल्कि उसकी कमज़ोरी पर तुम्हे तरस आती। पर यह बात नहीं है।

यदि तुम मुझ से पूछना चाहो कि मुझे क्या करना चाहिए तो मै तुम्हे यही सलाह दूँगा कि एक ऐसा मौक़ा ढूँढ निकालो, जब तुम्हारा पति बहुत प्रसन्न हो, तुम पर खूब प्यार दिखा रहा हो और उसे फिर बड़ी मधुरता और अत्यंत नम्रता के साथ विनय-पूर्वक समझाओ कि उसकी विकार-तृप्ति की चेष्टाये तुम्हारे लिए कितनी दुखदायी हैं। उसे समझाओ कि तुम उनसे अपना छुटकारा चाहती हो। यदि वह इसे मंजूर न करे (जैसा कि तुम लिखती हो) तो उसकी इच्छा के वश हो जाओ, यदि तुम्हे परमात्मा बच्चे दे तो उनका स्वागत करो। पर गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के समय में तो ज़रूर अपने पति से कहो कि वह

तुम से दूर रहे। इसके बाद यदि वह फिर विषय-तृप्ति चाहे तो फिर उसकी बात मान लो। बस, फिर आगे की चिन्ता करना छोड़ दो। परमात्मा तुम्हारा कल्याण ही करेगा।

ऐसा करने से तुम्हारे, तुम्हारे पति और उन बच्चो के लिए सिवा कल्याण के और कुछ हो ही नहीं सकता। क्योंकि ऐसा करने से तुम अपने सुख की साधना नहीं करोगी, बल्कि परमात्मा की इच्छा के सामने अपना सिर झुकाओगी।

यदि इसमें तुम्हे कोई ग़लत सलाह दिखाई दे तो मुझे क्षमा करना। परमात्मा को साक्षी रखकर, मैंने वही लिखने का प्रयत्न किया है जैसा कि मै अपने जीवन मे रहा हूँ और जैसा कि मैंने इस विषय मे अब तक सोचा है।

*　　*　　*　　*

पति और पत्नी के बीच यदि कुछ अप्रियता उत्पन्न हो जाय तो वह नम्रता से ही दूर हो सकती है। सीते वक्त धागा यदि उलझ जाता है तो उलझन की प्रत्येक गुत्थी के अंदर से शान्ति-पूर्वक रील को निकालते जाने ही से वह सुलझ सकती है।

*　　*　　*　　*

मालूम होता है वह अपने विवाहित जीवन से एक स्पृहणीय न्याय-कर्म से असंतुष्ट है। मै चाहता हूँ कि ऐसा न हो तो अच्छा। निश्चयपूर्वक समझो कि बाहरी बाते पूर्णतया कभी अच्छी नहीं होती। यदि एक अविवेकपूर्ण मनुष्य का एक देवी के साथ विवाह हो और एक अन्य प्रकार के आदमी का एक राक्षसी के

साथ विवाह हो तो वे दोनो एक दूसरे से असंतुष्ट होगे । और अपने विवाह से असंतुष्ट रहने वाले कई लोग, नही प्राय: सभी यही मानते हैं कि उनकी सी बुरी अवस्था किसी की न होगी । इस-लिए सब की अवस्था एक सी होती है ।

यदि तू स्त्री को—यद्यपि वह तेरी पत्नी हो एक आनंददायक सुख-सामग्री समझता है तो तू व्यभिचार करता है । शारीरिक परिश्रम के कानून की पूर्ति के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध के मानी हैं एक भागीदार या उत्तराधिकारी का प्राप्त करना । वह स्वार्थमय आनंद से युक्त रहता है । पर विपयानन्द के ख़याल से तो वह पतन है ।

*　　*　　*　　*　　*

बाग़वान की स्त्री को फिर एक बच्चा हुआ है । फिर वह बूढ़ी दाई आई और बच्चे को ले गई, परमात्मा जाने कहाँ ।

प्रत्येक मनुष्य को भयंकर अंसतोष हो रहा है । सन्तति-निरोध के उपायो के अवलम्बन की इतनी परवाह मुझे नही है । पर यह तो एक ऐसी बुराई है कि उसके धिक्कार ने योग्य मुझे कोई शब्द ही ढूंढे नही मिलते ।

आज पता लगा है कि दाई उस बच्चे को लौटा गई है । रास्ते मे उसे अन्य स्त्रियाँ मिली जिसके पास ऐसे ही बच्चे थे । इनमे से एक बच्चे के मुँह मे कोई खाने की चीज़ रक्खी हुई थी । मुँह मे वह बहुत गहरी उतरी हुई थी । बच्चे के कंठ मे वह अटक गई और वह दम घुटकर मर गया । मॉस्को के अना-

थालय मे एक ही दिन मे ऐसे पच्चीस बच्चे गये थे। उनमें से नौ बच्चे लौटा दिये गये थे जो या तो अनाथ न थे या बीमार थे।

एन्०—आज सुबह बाग़वान की औरत को फटकार सुनाने के लिए गया था। उसने अपने पतिका बड़े जोरो से समर्थन करते हुए कहा कि अपने जीवन की वर्तमान अनिश्चितता और गरोबी के कारण वह अपने बच्चो का पालन-पोषण करने मे असमर्थ थी। एक शब्द मे कहना चाहे तो बच्चो को रखना उसके लिए बड़ा 'असुविधाजनक' था।

अभी, अभी तक तीन अनाथ बच्चे मेरे पास रहते थे। बच्चों की पैदाइश बेहद बढ़ गई है।

बेचारे शराबखोर, बीमार, और जंगली बनने के लिए पैदा होते और बढ़ते हैं।

लोग भी बड़े बेढब है। वे भी एक ही साथ बच्चो और मनुष्यो की जान बचाने और नष्ट करने के उपायों को खोजते रहते हैं। पर इतने बच्चे वे पैदा ही क्यो करते है?

मनुष्यो को चाहिए कि वे बच्चों को या मनुष्यो को मारे नही, न उन्हे पालन करना बन्द करें। बल्कि वे अपनी तमाम शक्ति जंगली मनुष्यो को सच्चे मनुष्य बनाने में लगा दे। बस, केवल यही एक बात अच्छी है। और यह काम शब्दो से नहीं, अपने प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा ही हो सकता है।

*　　*　　*　　*　　*

यदि उनका पतन हो जाय तो वे समझ ले कि इस पाप से मुक्त होने के केवल दो ही उपाय हैं—(१) अपने को विकार-रहित

बनावें और (२) बच्चों को सुसंस्कृत कर उन्हे ईश्वर के सच्चे सेवक बनावे ।

*   *   *   *   *

प्यारे एम. और एन. मुझे तुम्हारे विवाह पर बड़ा आनन्द हो रहा है। परमात्मा तुम्हे सुख-शान्ति और निर्मल प्यार दे। बस, इससे अधिक की तुम्हे आवश्यकता ही नहीं । पर प्यारे मित्रो, क्षमा करना। मै तुम्हे सावधान करने से अपने आप को रोक नहीं सकता। दोनो खूब सावधान रहना। अपने पारस्परिक सम्बन्ध मे खूब सावधान रहना, कहीं तुम्हारे अन्दर चिड़चिड़ापन और एक दूसरे से अलग होने की वृत्ति न घुसने पावे। एक शरीर और एक आत्मा होना कोई आसान बात नहीं है। मनुष्य को खूब प्रयत्न करना चाहिए। फल भी महान् होगा। उपाय यदि पूछो तो मै तो केवल एक ही जानता हूँ। अपने वैवाहिक प्रेम को पारस्परिक और स्वाभाविक प्रेम पर कभी प्रभुत्व न जमाने देना—दोनो एक दूसरे के मनुष्योचित अधिकारो का खूब खयाल रखना। पति-पत्नी का सम्बन्ध ज़रूर रहे; पर जैसा मनुष्य एक अपरिचित आदमी या एक पड़ोसी के साथ, जो सज्जनोचित बर्ताव और आदर सम्मान करता है वही तुम्हारे बीच भी हो। यही सत्सम्बन्ध की बुनियाद है।

❀   ❀   ❀   ❀

एक दूसरे के प्रति आसक्ति को न बढ़ाओ। बल्कि अपनी तमाम शक्ति से अपने पारस्परिक सम्बन्ध मे सावधानी, तथा विचारशीलता बढ़ाओ, जिससे तुम्हारे बीच कटुता न उत्पन्न हो।

बात बात पर झगड़ना बड़ी भयंकर आदत है। पति-पत्नी को छोड़ और किसी सम्बन्ध मे इतनी सर्वाङ्गीण घनिष्ठता नही होती और इसलिए सब से ज्यादह एहतियात की भी आवश्यकता है। इस घनिष्ठता ही के कारण हम अक्सर उस पर विचार करना भूल जाते हैं; जिस प्रकार अपने शरीर के विषय मे हम सावधानी रखना भूल जाते हैं, और यही बुराई की जड़ है।

* ❀ * ❀

एक विवाहित दम्पती के लिए उपन्यासो के वर्णनो के अथवा अपनी हार्दिक इच्छा के अनुसार सुखी हाने के लिए वैसा ही मेल होना आवश्यक है। पर यह तभी हो सकता है जब विश्व-जीवन का ध्येय और बच्चो के सम्बन्ध मे उनके विचारो मे एकता हो। पति-पत्नी का विचार, ज्ञान, रुचि और संस्कृति एक सी होना एक असम्भव सी बात है। अत. सुख तो उन्हे तभी प्राप्त हो सकता है जब दो मे से एक अपने विचारो को दूसरे के विचारो के सामने गौण समझ ले।

पर यही तो मुख्य कठिनाई है। उच्च विचार वाला पुरुष या स्त्री नीच विचार वाले के सामने अपने विचारो को गौण नही समझ सकता, चाहे वह इस बात को दिल से भी चाहता हो। मेल के लिए आदमी अपना खाना छोड़ सकता है, नीद कम कर सकता है, कठिन परिश्रम कर सकता है, पर वह नही कर सकता, जो उसके विचार मे ग़लत, अनुचित और विचारहीन ही नही बल्कि विचार, सदाचार और सिद्धान्त के विपरीत हो। नि.सन्देह दोनो

के दिल मे यह भाव होता है कि उनका जीवन पारस्परिक मेल के आधार पर ही सुखी हो सकता है; दोनों इस बात को भी जानते है कि उनके बच्चो की शिक्षा भी इसी विचार की एकता के ऊपर निर्भर है, परन्तु फिर भी एक स्त्री अपने पति की शराबखोरी या जुआखोरी से कभी सहमत नहीं हो सकती और न एक पति इस बात को मंजूर कर सकता है कि उसकी पत्नी नाच-गान, मे बार बार शरीक होती रहे या उसके बच्चो को नाचना—कूदना या ऐसी ही वाहियात बाते सिखलाई जायॅ।

संयुक्त-जीवन को सुखमय तथा कल्याणरूप बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जो अपने को दूसरे की अपेक्षा कम सुसंस्कृत देखने और दूसरे की श्रेष्ठता को अनुभव करने वाला—फिर वह पुरुष हो या स्त्री—खाने-पीने पहनने आदि गृहव्यवस्था-सम्बन्धी बातो मे ही नही, बल्कि जीवन के विशेष महत्वपूर्ण प्रश्नो, आदर्शों आदि के विषय मे भी अपने से उच्चतर विचार रखने वाले व्यक्ति के—फिर वह पति हो या पत्नी—आदर्शों को ही प्रधानता दे।

क्योकि पति, पत्नी, बच्चे और समस्त परिवार के सच्चे कल्याण के लिए मधुर मेल का होना परम आवश्यक है। उनकी अनबन और झगड़े, उनके तथा बच्चो के लिए एक विपत्ति है और दूसरो के कार्य मे विघ्न। और इसे टालने के लिए केवल एक बात की जरूरत है—दो मे से एक दूसरे की बात को मान ले।

मेरा तो खयाल है कि जब दो मे से कोई इस बात को महसूस करने लगता है कि दूसरा उससे श्रेष्ठ है, तब उसे उसके विचार और निर्णयो को प्रधानता देना अपने आप आसान हो जाता है

यहाँ तक कि जब कभी हम इसके विपरीत आचरण देखते हैं तो हमे वड़ा आश्चर्य होता है ।

❀ ❀ ❀ ❀

विवाहित दम्पति के जीवन और व्यावहारिक विचारो मे मेल न हो तो कम सोचने वाले को चाहिए कि अधिक सोचने वाले के विचारो को प्रधानता दे ।

मनुष्य को चाहिए कि वह मानवता और परिवार की सेवा को एकरूप कर ले । दोनो की सेवा मे अपना समय विभक्त करके वेमन से नहीं वल्कि अपने परिवार की सेवा करके मनुष्य-जाति की सेवा करे । अपने परिवार के व्यक्तियो को और वच्चो को सुशिक्षित वना कर मनुष्य-जाति की आदर्श सेवा करे । सच्चा विवाह, जिसका फल संतानोत्पत्ति होता है, परमात्मा की अप्रत्यक्ष सेवा ही है । इसलिए विवाह हो जाने पर हमे एक प्रकार की शान्ति मिलती है । उसे तो अपने काम को दूसरे के हाथो मे सौपने का क्षण समझना चाहिए । यदि मैंने अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं किया तो मेरे प्रतिनिधि मेरे वच्चे हैं । ये कर डालेंगे ।

पर सवाल यह है कि उन्हे इस कर्तव्य के पालन करने के योग्य होना चाहिए । उनका शिक्षा-संस्कार इस तरह होना चाहिए जिससे वे परमात्मा के काम के बाधक नहीं, साधक हो । यदि मै अपने आदर्श के नजदीक नहीं पहुँच सका तो मुझे यह कोशिश करनी चाहिए जिससे मेरे बच्चे उसके नजदीक पहुँच सकें । वस, यही इच्छा वच्चो के शिक्षा-संस्कार की समस्त

योजना और शैली को निश्चित कर देती है। वह उसमे धार्मिकता उत्पन्न कर देती है। यही भावना है जो आत्मोत्सर्ग की सर्वश्रेष्ठ आकांक्षाओ का उदय एक युवक के हृदय मे कर देती है और उसे अपने परिवार-मार्ग से मानव-जाति की सेवा के योग्य बना देती है।

❀ * * ❀

मैं इस नवागत देवदूत का स्वागत करता हूँ। यह कौन है? कहाँ से आया है? क्यो आया है? कहाँ जायगा? विज्ञान जिन के लिए इन प्रश्नो का उत्तर सुझा देता है, उनके लिए तो अच्छा ही है। पर जिनके लिए विज्ञान मार्ग-दर्शक नही है, उनको विश्वास करना चाहिए कि एक बालक का जन्म बड़ी अर्थपूर्ण और रहस्यमय बात है। इस रहस्य को हम तभी और उतने ही अंशो मे समझेगे जितने अंशो मे हम उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करेगे।

विवाहित पुरुषो को या तो अपनी स्त्री और बच्चो को छोड़ देना चाहिए जो कि कोई नही मान सकता, या एक स्थान पर बस जाना चाहिए। उनका यहाँ वहाँ भटकना उनकी स्त्रियो के लिए अत्यंत दुःखदायी साबित होता होगा जो अक्सर परमात्मा के लिए नही, बल्कि अपने पति के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करती हैं और यह उनके लिए बड़ा कष्टप्रद होता होगा। इस लिए हमें उन पर दया करनी चाहिए। पति और पत्नी कुछ रोज़ एक जगह शान्तिपूर्वक रहते है, अपनी गृहस्थी जमाते हैं

और फिर एकाएक उन्हे अपना घरबार उठाकर दूसरी जगह जाना पड़ता है। फिर वहाँ नया घरबार जमाओ। यह सब उनकी शक्ति के बाहर है। ऐसी बुनियाद पर बनाई गई इमारत कितने दिन खड़ी रह सकती है ? मैं जानता हूँ कि तुम यही कहोगे कि इस हालत में मनुष्य को अपने बालबच्चों को अपने साथ ले ले कर न दौड़ना चाहिए उन्हे एक जगह रखकर आप कहीं भी दौड़ता रहे। मेरा ख़याल है कि यह तो परस्पर आपस में सलाह कर के ही करना चाहिए। इस पर भी ईसा का एक वचन है जिसका ख़याल करना बहुत ज़रूरी है। वह कहता है—स्त्री और पुरुष अलग २ नहीं एक ही हैं, जिन्हे परमात्मा ने सम्मिलित किया है, उन्हे मनुष्य जुदा जुदा न करे। तुम्हारे जैसे हट्टे-कट्टे और सुखी प्राणियो को पहले तो शादी ही न करनी चाहिए किन्तु कर लेने पर और बालबच्चे पैदा हो जाने पर उनकी लापरवाही न करनी चाहिए। मेरा ख़याल है कि पुरुषो का अपनी पत्नियों को छोड़ना महापाप है। यह ठीक है कि पहले पहल यही मालूम होता है कि स्त्री और बच्चों से अलग रह कर आदमी परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है। पर कई बार यह केवल भ्रम ही साबित हुआ है। यदि तुम पूर्णतया निष्पाप होते तो शायद यह हो सकता था। दूसरे किसी को ऐसा उपदेश भी न करना चाहिए जिससे वह अपनी स्त्री और बालबच्चो को छोड़ दे। क्योंकि इससे इस अनुचित त्याग का करने वाला अपनी नजर मे तथा दूसरो की नजर मे भी अपने आपको बड़ी निराशामय परिस्थिति मे पावेगा। यह तो बुरा है। मेरा तो ख़याल है कि कम-

जोर और पातकी मनुष्य भी परमात्मा की सेवा कर सकता है।

विवाह एक पाप है। मनुष्य को चाहिए कि वह कभी पाप न करे। और यदि उसके हाथ से वह हो ही जाय तो उसको चाहिए कि वह उसके फल को भी आप भोगे। उससे मुँह मोड़ कर दूसरा पाप न करे। बल्कि इसी अवस्था मे तन-मन से परमात्मा की सेवा करे।

❀ ❀ ❀ ❀

हाँ, ईसा ने परमात्मा की सेवा का जो आदर्श पेश किया है वह जीवन तथा मनुष्य-जाति को टिकाये रखने की चिंताओ से युक्त है। अपने को उन चिंताओ से युक्त रखने के प्रयत्न ने अब तक तो मनुष्य जाति का नाश नहीं किया! आगे क्या होगा, सो तो मैं नहीं जानता।

अपने ज़माने की विचित्रताओं के विषय मे कुछ कहने की इच्छा नही होती। पर तमाम ईसाई देशोके ग़रीब और अमीरो मे पती और पत्नी, स्त्री और पुरुप के बीच जो सम्बन्ध है, वह सचमुच अजीब है। जैसा कि मुझे दिखाई देता है स्त्रियो के द्वारा यह सम्बन्व बुरी तरह बिगाड़ दिया गया है, वे पुरुपो के साथ केवल औद्धत्य ही नही करती बल्कि उनका द्वेप तक करने लग जाती हैं। वे अपनी ठसक जताना चाहती है। वे दिखाना चाहती हैं कि वे पुरुषो से किसी बात मे कम नहीं हैं। जो बाते पुरुष कर सकते है, वे सब स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। सच्ची नैतिक और धार्मिक भावना का एक तरह से उनमें अभाव सा मालूम

होता है। यदि कहीं होता भी है तो उनके माता बनते ही वह अदृश्य हो जाता है। ❀

*　　　*　　　*　　　*

मेरा ख़याल है कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी बात में भी कम नहीं हैं। पर ज्योंही वे शादी कर लेती हैं और मातायें बन जाती हैं त्योंही श्रम का एक स्वाभाविक विभाग हो जाता है। मातृत्व उनकी इतनी शक्ति को खींच लेता है कि फिर परिवार के लिए नैतिक मार्ग-दर्शिका बनने के लिए उनके नज़दीक कोई उत्साह ही नहीं रह जाता। स्वभावतः यह काम पति पर आन पड़ता है। बस, संसार के आरम्भ से यही चला आया है।

पर आजकल कुछ गड़बड़ी हो गई है। पुरुष ने अपने इस अधिकार का बीच बीच में दुरुपयोग किया। अपनी राय और मत उसने स्त्री पर जबरदस्ती लादे और स्त्री को ईसाई धर्म के द्वारा स्वाधीनता मिलने के कारण, उसने डरकर पुरुष की आज्ञा मानना छोड़ दिया है। पर उसने अभी स्वेच्छापूर्वक पुरुष की के मार्ग-दर्शन को अच्छा समझकर उसको मंजूर करना शुरू नहीं किया। यह तो समाज के प्रत्येक अंग के अवलोकन से स्पष्ट होगा।

स्त्री-पुरुषों के बीच जो अधिकांश दुःख पाया जाता है, उसका प्रधान कारण उनका एक दूसरे को भली-भाँति न समझना ही है।

❀ जहाँ कहीं टॉल्स्टाय ने स्त्रियों के विषय में ऐसी बातें कही हैं वहाँ उनका मतलब उन वामाओं से है जो अपने स्वाभाविक सौजन्य से, बुरी सोहबत के कारण हाथ धो बैठी हैं।—अनुवादक

पुरुष इस बात को कदाचित् ही समझ पाते हों कि स्त्रियों के लिए बच्चे कितने प्यारे होते हैं। साथ ही स्त्रियाँ भी तो पुरुष के सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक कर्तव्यो को क्वचित् ही समझ पाती हैं।

* * * * *

यद्यपि पुरुष कभी अपने पेट मे बच्चो को न रख सकता है और न जन सकता है, तथापि वह इस बात को ज़रूर समझ सकता है कि ये दोनो काम महा कठिन हैं अत्यंत कष्टप्रद हैं। साथ ही वह इसके महत्व को भी भली भाँति जानता है। पर इस बात को बहुत कम स्त्रियाँ जानती है कि आध्यात्मिक रीति से जीवन-कार्य को सोचना और तय करना एक गुरुतर और महान् कार्य है। थोड़ी देर के लिए कभी कभी वे समझ भी लेती हैं तो उसी क्षण भूल जाती हैं, और ज्योंही उनकी अपनी बातें आती हैं–फिर वे पहनने-ओढ़ने जैसी कितनी ही तुच्छ पारिवारिक बातें क्यो न हो—वे पुरुषों के विश्वासो की सत्यता और दृढ़ता को फ़ौरन् भुला देती है। वह उनको अपने गहने-कपड़ों के सामने असत्य और काल्पनिक प्रतीत होता है।

* * * * *

मुझे यह कल्पना सुनकर बड़ा ही विस्मय हुआ कि स्त्री और पुरुष के बीच जो अक्सर लड़ाई छिड़ जाती है, उसका कारण प्रायः यह भी होता है कि परिवार का काम किस तरह चलाया जाय। एक पत्नी कभी इस बात को स्वीकार नहीं करती

कि उसका पति होशियार और व्यवहारचतुर है। क्योंकि यदि इसे वह क़बूल कर ले तो पति की सब बाते भी उसे माननी पड़ें। यही बात पुरुष के विषय मे भी चरितार्थ होती है।

यदि मै इस समय 'दी क्रयूजार सोनारा' लिखता होता तो मै इस बात को जरूर सामने रखता।

※ * * * *

अंततोगत्वा वही शासन करने लगते हैं जिन पर जबरदस्ती की गई है, अर्थात् जिन्होने अप्रतिकार के कानून का पालन किया है। स्त्रियाँ अधिकारो के लिए प्रयत्न कर रही हैं, पर वे महज इसीलिये शासन करती हैं कि उन पर बल का प्रयोग किया गया है। संस्थायें पुरुषो के हाथो मे है। पर लोकमत तो स्त्रियो के ही अधीन है, और लोकमत तो तमाम कानून और फ़ौजो की अपेक्षा लाखो गुना अधिक शक्तिशाली है। लोकमत स्त्रियो के अधीन है, इसका प्रमाण यह है कि न केवल गृहव्यवस्था, भोजन, आदि स्त्रियो के अधीन हैं, बल्कि स्त्रियाँ धन के व्यय को भी अपने अधीन रखती हैं। इसलिए मानव-परिश्रम भी उन्ही के हाथो में है। कला के कार्य तथा पुस्तको की सफलता और ठेठ शासको का चुनाव तक लोकमत के अधीन है और लोकमत का सञ्चालन करने वाली स्त्रियाँ हैं।

किसी ने कहा है कि स्त्रियो को नहीं पुरुषो को स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

एक खूबसूरत स्त्री अपने आप कहती है "मेरा पति होशियार

है, विद्वान् है, कीर्तिशाली है, श्रीमान् भी है। वह नीतिमान् और पवित्र पुरुष है। पर मेरे नजदीक तो वह मूर्ख, अज्ञानी, दरिद्र, तुच्छ और अनीतियुक्त है—मैं जैसा कहती हूँ, मान लेता है; इसलिए उसकी विद्या, बुद्धि और सब कुछ वृथा है।" यह विचारशैली बहुत घातक है। यही उस स्त्री के नाश का कारण होती है।

हमारे जीवन की दुर्दशा तभी होती है, जब स्त्री बलवती हो जाती है। स्त्री बलवती तभी होती है, जब पुरुष विषयों का दास बन जाता है। इसलिए यदि खराब जीवन से बचना है और पूर्ण गृह-सुख का उपभोग करना है तो पुरुष को संयमशील बनना चाहिए।

* * * *

वह कहानी रोचक क्यों हुई? इसलिए कि उसे लिखते समय मैंने इस बात को हमेशा अपने सामने रक्खा कि पुरुष स्त्री की विषय-लोलुपता को बढ़ाता जा रहा है। डाक्टरों ने संतान-निरोध कर दिया। अब स्त्री तो विकारों से परिपूर्ण हो गई। वह अपने को रोक न सकी। इसी समय कला ने भी तमाम प्रलोभनों को उसके सामने लुभावने रूप में पेश किया। बतलाइए, ऐसी अवस्था में वह पतन से कैसे बच सकती थी? पति को जानना चाहिए था कि अपनी स्त्री के पतन का मूल कारण वह स्वयं ही था। जब वह उसका द्वेष करने लगा तब तो वह मर ही गई। बाद में तो यह उसे छोड़ने के लिए एक निमित्त मात्र ढूँढ़ रहा था। उसके मिलते ही वह खुश हो गया।

यदि सवाल यह है कि पति अपने बच्चो के पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि से अपना छुटकारा करना चाहता है, यदि उनको सुलाने, नहलाने उनके कपड़े साफ़ करने, उनका खाना बनाने, उनके कपड़े सीने आदि की चिन्ता से मुक्त होना चाहता है तो यह अत्यन्त अनुचित, निर्दयतापूर्ण और अन्याय है।

स्वभावतः बच्चो के पालन-पोषण मे स्त्रियो का अधिक समय और शक्ति खर्च होती है। इसलिए अन्य पारिवारिक आवश्यक कर्तव्यो को हानि न पहुँचाते हुए यदि अन्य सब कार्यों का भार पुरुष ले ले तो यह अस्वाभाविक न होगा और प्रत्येक समझदार आदमी यही करता भी है। पर हमारे समाज मे ऐसी जंगली चाल पड़ गई है कि सारे काम का बोझ जो कमज़ोर जाति होती है, जो नम्र होती है, उसी पर डाल दिया जाता है और यह रिवाज गहरी जड़ पकड़ गया है। मनुष्य स्त्रियो की समानता को कुबूल करता है, वह कहता है कि स्त्रियो को कॉलेज मे प्रोफेसर और डाक्टर हो जाना चाहिए। पुरुष स्त्रियो का जी जान से आदर भी करता है पर यदि दोनो के बच्चे ने किसी कपड़े पर टट्टी कर दी हो तो उसे धोने का काम उससे न होगा। यदि बच्चे के कपड़े कही फट गये हो, और स्त्री बीमार हो या थक गई हो, या घड़ी भर लिखना या पढ़ना चाहती हो तो यह भी उससे न होगा। उसे यह कर डालने का विचार तक न आवेगा।

लोकमत भी इस विषय मे इतना पतित हो गया है कि यदि कोई दयावान् कर्तव्यशील पुरुष ऐसा करने लग जाय तो 'लोग

उसकी मखौल उड़ावेंगे। इसका प्रतिकार करने के लिए बहुत भारी पौरुष की आवश्यकता है।

इसलिए इस विषय मे मैं तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूँ। तुमने इस बात को प्रकट करने का मुझे मौका दिया, इसलिए मैं तुम्हारा सचमुच बहुत एहसानमन्द हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

सच्चा स्त्री-स्वातंत्र्य यह है, किसी भी काम के विषय मे यह न समझा जाय कि यह केवल स्त्रियो का ही काम है और हमे उसे करते हुए लज्जा मालूम होती है। वल्कि उसे कमज़ोर समझ कर हमें तो प्रत्येक काम मे उसकी सहायता करनी चाहिए। जितना हो सके, हमे उसके काम को हलका करने की कोशिश करनी चाहिए।

उसी प्रकार उनकी शिक्षा के विषय में भी हमे विशेष साव-धानी रखनी चाहिए। यह समझ कर कि इनकी शादी होने पर बच्चो के जनन, पालन-पोषण आदि मे उनको लिखने-पढ़ने के लिए काफ़ी समय न मिलने पावेगा हमे उनके स्कूलो पर लड़को के स्कूलों की अपेक्षा भी अधिक ध्यान देना चाहिए। इसलिए कि वे जितना भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, विवाह और मातृत्व के पहले-पहल कर लें।

* * * * *

यह बिलकुल सत्य है कि स्त्रियाँ और उनके काम के विषय मे कितनी ही हानिकर और पुरानी धारणाएँ हमारे समाज मे

प्रचलित हैं। उनके खिलाफ भी हमे उतनी ही आवाज़ उठानी चाहिए। पर मेरा ख्याल है कि स्त्रियों के लिए पुस्त-कालय और अन्य संस्थाये खोलने वाला समाज उनके लिए न झगड़ सकेगा।

मै इसलिए नहीं झगड़ता कि स्त्रियो को कम वेतन दिया जाता है। काम की कीमत तो उसको देखकर ही होती है। मुझे सब से ज्यादह रोष तो इस बात का होता है कि एक तो स्त्री पहले ही बच्चो को जनने, पालन करने आदि के कारण बेज़ार रहती है, तिस पर उसके सिर पर और खाना पकाने का भार भी डाल दिया जाता है।

बेचारी चूल्हे के सामने तपे बर्तन मले, कपड़े धोये, खाने पीने का सामान साफ़ करे, सीये-पिरोये और मरे। यह सब काम का बोझ केवल स्त्री पर ही क्यो डाल दिया जाता है? एक किसान, मज़दूर, या सरकारी मुलाजिम को सिवा बैठे बैठे हुक्का गुड़गुड़ाने के और कोई काम नहीं रहता। वह निकम्मा बैठा रहता है और सब काम स्त्री पर छोड़ दिया जाता है। भले ही वह बीमार हो, पर उसे खाना पकाना चाहिए, कपड़े धोने चाहिए या रात-रात जागकर बीमार बच्चे की शुश्रूषा करनी ही चाहिए। और यह सब क्यो हो रहा है? महज़ इसीलिए कि समाज मे इस मान्यता ने जड़ पकड़ ली है कि ये कुल काम स्त्रियो के ही करने के हैं।

यह एक भयंकर बुराई है। इससे स्त्रियो मे असंख्य रोग पैदा होते है। उनकी और उनके बच्चो की तमाम ज्ञान-शक्ति

कुंठित हो जाती है और असमय मे बूढ़ी होकर वे इस लोक से चल बसती है।

*　　*　　*　　*

स्त्रियो ने हमेशा पुरुषो के अधिकार को मान लिया है। इसके विपरीत संसार मे और होता भी क्या ? पुरुप अधिक शक्ति-शाली है, इसलिए वह स्त्रियों पर शासन करता है। सारे संसार मे यही होता आया है। स्त्री-राज्य की कहानी प्रचलित है, उसकी तो राम जाने। पर आज भी समाज मे हज़ार मे से ९९९ उदा-हरण ऐसे ही मिलेंगे। ईसा ने जन्म लिया और बताया कि पशुबल नही किंतु प्रेम मनुष्य-जाति को पूर्णता की ओर ले जायगा। इस भावना ने तमाम गुलामो का और स्त्रियो को मुक्त पर दिया। पर निरंकुश स्वाधीनता भी एक महान् सकट साबित होती, इस-लिए यह तय किया गया कि तमाम स्वाधीन स्त्री पुरुष ईसाई हो जायॅ अर्थात् ईश्वर और मनुष्य की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दें। अपने लिए न जीयें। गुलाम और स्त्रियॉ मुक्त तो हो गईं, पर वे सच्ची ईसाई न बनी। इसीलिए वे संसार के लिए भयंकर साबित हुईं। ससार की तमाम आपत्तियो की जड़ स्त्रियॉ ही है, इसलिए किया क्या जाय ? क्या फिर उन्हे गुलाम बना दिया जाय ? यह तो असम्भव है, क्योकि यह कोई करने वाला नही है। सच्चे ईसाई गुलाम बना नही सकते और गैर-ईसाई इसे मंजूर न करेंगे, झगडेगे। बात तो यह है कि वे अपने ही बीच मे झगड़ रहे हैं। वे तो ईसाइयो को ही जीत रहे है और गुलाम बना रहे हैं। तब क्या किया जाय ? केवल एक ही

बात रह जाती है। लोगो को ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया जाय, उन्हे ईसाई बना दिया जाय और यह सभी हो सकता है जब मनुष्य अपने जीवन में ईसा के बताये धर्म का पूरा पूरा पालन करना शुरू कर दें।

❀ ❀ ❀ *

जा स्त्रियाँ पुरुषों के जैसा काम और स्वाधीनता चाहती हैं, वे यथार्थ में अज्ञानतः स्वच्छन्दता की अभिलाषिणी हैं। फलतः वे जहाँ ऊपर चढने की, उन्नति करने की सोच रही है—उसी में उनकी अवनति है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं स्त्रियो और विवाह के विषय मे बहुत कुछ सोचता रहता हूँ। और मै अपने विचारो को प्रकट भी कर देना चाहता हूँ। अवश्य ही मेरे विचार इन क्षुद्र वस्तुओ के विषयो मे (महिला विद्यापीठ आदि के विषय मे, नही है। मैं तो उस महान् गौरवास्पद बात के विषय में सोच रहा था जिसे रमणी-धर्म कहते है। इसके विषय मे कई बहुत बुरी बुरी बाते स्वयं शिक्षित स्त्रियो में फैलाई जा रही हैं। मसलन, स्त्रियो को यह समझाया जाता है कि उन्हें दूसरो के बच्चों से अपने बच्चो पर अधिक प्यार न करना चाहिए। पुरुषो के साथ उनकी समानता होने के विषय मे भी कुछ भ्रम-पूर्ण और समझ मे न आने योग्य बाते फैलाई जाती हैं।

पर यह बात कि उसे दूसरो की अपेक्षा अपने बच्चो

पर अधिक प्यार न करना चाहिए सभी जगह कही जाती है और एक स्वयं-सिद्ध वात समझी जाती है। व्यावहारिक नियम के अनुसार भी,यह तमाम उपदेशो का सार है। पर फिर भी यह सिद्धान्त विलकुल गलत है।

* प्रत्येक मनुष्य का—स्त्री का और पुरुष का—भी पेशा है मानव-जाति की सेवा। इस सार्वभौम तत्व को तो, मेरा ख्याल है, सभी नीतिमान् पुरुष मानेगे। इस कर्तव्य की पूर्ति मे स्त्री और पुरुष के वीच उसकी पूर्ति के साधनों की योजना के अनुसार महान् भेद है। पुरुष शारीरिक, मानसिक और नीतियुक्त कार्यों द्वारा यह सेवा करता है। उसके सेवा करने के मार्ग असंख्य हैं। वच्चे पैदा करने और उनको दूध पिलाने को छोड़ कर, ससार मे जितने भी काम हैं पुरुष की सेवा के क्षेत्र हो सकते है। स्त्री उन सव कामो के अतिरिक्त भी अपनी शरीर-रचना के कारण एक खास काम के लिए नियुक्त की गई है और पुरुष के कार्य-क्षेत्र से वाहर रख दी गई है। मानव-सेवा दो प्रकार के कार्यों मे विभक्त हो गई है। एक तो वर्तमान मानवो का कल्याण या सेवा करना और दूसरे

---

* यहाँ पर यह कह देना जरूरी है कि यह उदाहरण तथा इस प्रकार के विचार दर्शाने वाले अन्य उद्धरण भी उस "अन्तिम कथन" के पहले लिखे गये हैं जिसमें उन्होंने अपने स्त्री-पुरुष विषयक विचारों को साफ साफ तौर से प्रकट कर दिया है। प्रस्तावना में यह वात वताने का प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थकार के पहले और वाद के विचारों में इतनी विभिन्नता क्यों है ?

मनुष्य जाति को कायम रखना। पहले प्रकार का कर्तव्य पुरुषों के सिर पर रक्खा गया है, क्योंकि दूसरे के लिए जिन सुविधाओं की आवश्यकता है, उनसे वह वंचित रक्खा गया है। स्त्रियों को दूसरे काम के लिए इस लिए रक्खा गया है कि केवल वे ही उसे कर सकती हैं। इस स्वाभाविक भेद को भुला देना या भुलाने की कोशिश करना पाप है। दर असल इसे कोई भुला नहीं सकता और न भुलाना चाहिए था। इसी भेद के कारण स्त्री-पुरुषों के कार्य-क्षेत्र में भी भेद हो गया है। यह भेद मनुष्य का बनाया कृत्रिम क्षेत्र नहीं, प्राकृतिक है। इसी विशेषता से स्त्री और पुरुष के गुण-दोषों की भी विभिन्नता उत्पन्न होती है जो युगों से चली आई है; आज भी है, और इसी तरह तब तक चली जायगी, जब तक मनुष्य विवेकशील प्राणी बना रहेगा।

जो पुरुष अपना समय पुरुषोचित विविध कामों को करते हुए व्यतीत करता है तथा जिस स्त्री ने बच्चे पैदा कर उनके पालन-पोषण आदि में ही आनन्द माना है, वह यही सोचेगी कि मैंने अपना समय अच्छे कामों में व्यतीत किया। वे दोनों मानवजाति के अन्दर और सम्मान के पात्र होंगे क्योंकि उन्होंने वही काम किया जो उचित है। पुरुष का पेशा विविध और विशाल है, स्त्री का काम एकरस और गहरा है। इसीलिए यह माना जाता है कि अपने एक, दस, सौ या हजार कामों में गलती करने वाला पुरुष उतना बुरा नहीं समझा जाता, क्योंकि उसके काय नाना-विध होने के कारण अन्य कितने ही कार्य ऐसे भी होते हैं जिनको वह अच्छी तरह न कर सका है या न कर सकता है। पर स्त्री

के तो केवल दो-तीन ही काम होते हैं। उनमे यदि वह गलती कर जाय तो कहा जायगा कि उसने एक तिहाई या दो तिहाई काम बिगाड़ डाला और उसकी बदनामी अधिक होगी। यही कारण है जो ससार मे स्त्रियो के सदाचार पर हमेशा इतना अधिक जोर दिया है। क्योकि यही तो सब से महत्वपूर्ण विषय है। पुरुष को अपने शरीर और बुद्धि-द्वारा ईश्वर की सेवा कर इन अनेक-विध क्षेत्रो मे काम कर उसके आदेश का पालन करना चाहिए। पर स्त्री तो केवल अपने बच्चो द्वारा ही यह सेवा कर सकती है। क्योकि उसके सिवा और कोई इस कार्य को कर ही नही सकता।

पुरुष को कहते हैं—'अपने काम के द्वारा ईश्वर की सेवा कर' 'कर्मणैव समभ्यर्च्य, सिद्धि विन्दति मानवः।' स्त्री को आदेश दिया है—'तू अपने बच्चो के द्वारा ही मेरी सेवा कर सकती है।' इसलिए उसका अपने बच्चो को प्यार करना स्वाभाविक है। इसके खिलाफ दलीलें करना व्यर्थ है। माता के लिए यह विशेष प्यार सर्वथा उचित है। बच्चो पर उनकी शैशावस्था मे माता का प्यार करना स्वार्थ या अहंकार नही, जैसा कि बताया जाता है। यह तो काम करने वाले का अपने काम के प्रति प्यार है जब तक कि वह उसके हाथो मे है। मनुष्य के अन्दर से काम का प्यार निकाल डालो फिर उसके लिए काम करना ही असंभव हो जायगा।

यदि मैं एक मूर्ति बना रहा हूँ तो जब तक वह मेरे हाथों मे होगी, मैं उसको खूब प्यार करूंगा, जैसा कि एक माता अपने बालक पर प्यार करती है। यह विशेष प्रेम तभी तक रहता है

जब तक कि मै उसको बना रहा हूँ। उसके पूरा बना चुकने पर, वह प्यार उतना गहरा नही रहता, बल्कि कमजोर और अनुचित प्रेम मात्र रह जाता है। यही माता के विषय मे भी चरितार्थ होता है।

पुरुष को अनेकों कामो द्वारा मानव-जाति की सेवा करने का आदेश दिया गया है और जब तक वह उन्हे करता है, उन्हे प्यार करता है। स्त्री को उसके बच्चो द्वारा मानव-जाति की सेवा करने का आदेश है और वह भी तब तक उनका पालन पोषण कर उनका प्यार करती रहती है, जब तक कि वे तीन पॉच या दस वर्ष के नही हो जाते।

इस तरह यद्यपि पुरुष और स्त्री के कार्य-क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं, तथापि दोनो के बीच एक विलक्षण साम्य है। दोनो सम-समान है। यह समानता की भावना तब और भी बढ़ जाती है जब हम देखते है कि दोनो कार्य एक ही से महत्त्व-पूर्ण और परस्परावलम्बी है—एक दूसरे के सहायक हैं। दोनो को सम्पन्न करने के लिए सत्य का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है, जिसके बिना उनके कार्य लाभदायक होने के बजाय हानिकर सिद्ध होने की सम्भावना है।

पुरुष को अनेक प्रकार के कार्य करने का आदेश तो है, पर उसके तमाम शारीरिक, मानसिक तथा धार्मिक कार्य तभी सफल होंगे, जब वह अपने अनुभूत सत्य के आधार पर इनको करेगा।

यही बात स्त्री के विषय मे भी चरितार्थ होती है। स्त्री का बच्चे पैदा करना, उनका पालन-पोषण करना, उनका प्यार करना आदि सब तभी सार्थक होगा जब वह उन्हे अपने आनन्द

के लिए नहीं, मानव-जाति की सेवा के लिए तैयार करती हो, जब वह अपने बच्चों को इसी श्रेष्ठ सत्य के अनुसार शिक्षित भी करती हो अर्थात् उन्हें यह सिखाती हो कि उनको मनुष्य-जाति से बहुत कम लेकर उसे बहुत ज्यादह देना चाहिए।

मैं उस स्त्री को आदर्श रमणी कहूँगा जो पहले अपने जीवन के तथा जगत् के लक्ष्य को समझ कर उसकी पूर्ति के लिए योग्य से योग्य बच्चे पैदा कर उन्हें उस महान् कार्य के लिये तैयार करे, जिसका कि उसने स्वयं दर्शन किया है। यह जीवन का लक्ष्य विद्यापीठों और महाविद्यालयों में आँखें मूँद कर शिक्षा प्राप्त करने से नहीं, आँखें और हृदय के द्वार खोल कर उस परम सत्य की आराधना द्वारा उसका उदय मानव-हृदय में होता है।

बहुत ठीक! पर वे लोग क्या करें, जिन्होंने विवाह नहीं किया था जो विधवा हैं अथवा जिनके सन्तान ही नहीं? वे यदि पुरुष के विविध कामों में हाथ बटावें तो अच्छा होगा। प्रत्येक स्त्री जिसने अपने बच्चों से सम्बन्ध रखनेवाले काम को पूर्ण कर लिया है। अपने पति के इस काम में शौक़ से शरीक हो सकती है और उसकी सहायता होगी भी बड़ी क़ीमती।

* * * *

स्त्रियों की बेहद तारीफ़ करके यह कहा करना अनुचित और हानिकार है कि उनकी मानसिक शक्तियाँ उतनी ही विकसित और उन्नत होती हैं जितनी कि पुरुषों की होती हैं।

मै मानता हूँ कि स्त्रियो के अधिकारों पर कोई नियन्त्रण न हो, उनका आदर और प्रेम पुरुषो के समान ही किया जाय और अधिकारो के विषय मे भी वे पुरुषों के समान हैं। पर यह कहना कि एक सात औरत एक साधारण पुरुष के इतनी ही बुद्धि, मानसिक विकास और अन्य विशेषतायें रखती है, और उससे इनकी आशा करना, अपने आप को धोखा देना है और स्त्रियो के साथ अन्याय करना है। क्योंकि इन बातो की आशा करके आप उनसे वे ही बातें चाहेंगे और उनके न मिलने पर आप चिढ़ेंगे और उन पर उन बातों के लिए बुरे बुरे दोषो का आरोप करेंगे, जो उनके लिए एकदम असंभव है।

अतः स्त्री को आध्यात्मिक दृष्टि से कमजोर समझना—जैसी की वह है—निर्दयता नही है, वल्कि निर्दयता तो है उस पर आध्यात्मिक समता का आरोप करने में।

आध्यात्मिक शक्तियो के कम होने से मेरे मानी हैं आत्मा को शरीर की अधीनता मे रखना। यह स्त्रियो की खास विशेषता है। स्वभावतः ही बुद्धि के आदेशों मे उनकी कम श्रद्धा होती है।

*　*　*　*

पारिवारिक जीवन तभी सुखमय हो सकता है, जब स्त्रियों को यह विश्वास दिला दिया जाय कि हमेशा पति की आज्ञा को मानने में ही उनका कल्याण है, और वे इसकी यथार्थता को समझ लें। मनुष्य-जाति के आरंभ-काल से यही चला आया है। इससे यह सिद्ध है कि यही जीवन स्वाभाविक भी है। पारि-

वारिक जीवन एक नाव के समान है, जिसका कर्णधार दो नही, केवल एक ही आदमी एक समय हो सकता है। और यह कर्णधार केवल पुरुष ही हो सकता है, क्योकि न तो उसको बच्चे पैदा करने पड़ते हैं और न उसके सिर पर उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी ही है। अतः वही परिवार का सच्चा नायक हो सकता है, स्त्री नही।

पर क्या स्त्रियाॅ हमेशा पुरुषो से कनिष्ठ होती हैं? आविवाहित स्त्रियाँ तो प्रत्येक बात मे पुरुषो के समान होती हैं। पर इसके क्या मानी कि स्त्रियाॅ इस समय केवल समानता ही नही, श्रेष्ठता का भी दावा करती है? बात यह है कि हमारा पारिवारिक जीवन उत्क्रान्ति कर रहा है। उसमे पुरानी प्रथा का कुछ समय के लिए छिन्न-भिन्न होना अनिवार्य है। स्त्री-पुरुषो का सम्बन्ध एक नवीन रूप धारण करने जा रहा है, वह पुराना रूप टूट रहा है।

इसका यह नवीन रूप कैसा होगा, कोई नही कह सकता! यद्यपि कई लोग भिन्न भिन्न प्रकार से इसकी रूपरेखा दिखाने का प्रयत्न करते है। संभव है, आगे अधिक लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने की कोशिश करें। शायद कुछ समय तक स्त्री-पुरुष साथ रहें, बच्चे पैदा होते ही फिर अलग अलग हो जायं और ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। शायद बच्चो की शिक्षा की व्यवस्था समाज ही करने लग जाय। किसी ने इन नवीन रूपो का दर्शन नही किया है और न कर ही सकता है। पर इसमे शक नही कि नवीन रूपो का निर्म्माण हो रहा है और पुराना रूप तभी टिक सकेगा जब

स्त्री, पुरुष की आज्ञा मे रहने लग जायगी। यही अब तक सब जगह होता आया है और जहाँ स्त्री पति की आज्ञा को मानने वाली है, वहीं सच्चा गार्हस्थसुख भी देखा जाता है।

*   *   *   *

कल मैं सीयंकिवीज Without Dogma पढ़ रहा था। स्त्री के प्रति प्यार का उसमे वड़ी अच्छी तरह वर्णन किया गया है। फरासीसी वैषयिकता, अंगरेजी मक्कारी और जर्मन दम्भ की अपेक्षा वह कहीं अधिक ऊँचा, कोमल और मृदुल है। मैंने सोचा पवित्र प्रेम पर एक वढ़िया उपन्यास लिखा जाय तो वड़ा अच्छा हो। उसमे प्रेम को वैषयिकता की पहुँच से ऊँचा वताया जाय। क्या विषय-वासना से ऊपर उठने का यह एकमात्र रास्ता नहीं है ? हाँ, विलकुल ठीक, यही है। वस, इसीलिए स्त्री और पुरुष वनाये गये हैं। केवल स्त्री के सहवास से वह अपना ब्रह्मचर्य खो सकता है और उसी की सहायता से उसकी रक्षा भी कर सकता है। ज़रूर इस पर एक उपन्यास लिखना चाहिए।

*   *   *   *

मनुष्य एक प्राणी है, इसलिए वह जीवन-कलह के कानून तथा सन्तानोत्पत्ति की जन्मजात बुद्धि के अधीन हो जाता है। पर एक विवेकशील प्रेमधर्मी और दिव्य प्राणी की हैसियत से उसका कर्तव्य भिन्न है। वह उसे जीवन-कलह मे अपने प्रतिस्पर्धी से झगड़ने का नहीं, उससे नम्रता, शान्ति और प्रेमपूर्वक

पेश आने का आदेश देता है। वह उसे विकाराधीन होने का नहीं, विकार पर अपना प्रभुत्व कायम करने का आदेश करता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मानव-जाति के सर्वश्रेष्ठ कर्तव्यो में ब्रह्मचारिणी तथा पति-व्रता स्त्रियो को तैयार करना भी एक है।

❀ ❀ ❀ ❀

एक कहानी मे कहा गया है कि स्त्री शैतान का शस्त्र है— सुकुमारं प्रहरणं। स्वभावतः उसके बुद्धि नही होती। पर जब वह शैतान के हाथो मे पड़ जाती है, तब वह उसे अपनी बुद्धि दे देता है और अब तमाशा देखिए। वह अपने नीचता भरे कार्यों के सम्पादन मे बुद्धि, दूरंदेशी, और दीर्घोद्योग मे कमाल कर जाती है। पर यदि कोई अच्छी बात करना है तो सीधी से सीधी बात उसके ध्यान मे नही आती। अपनी वर्तमान परिस्थिति से आगे वह देख ही नही सकती। बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करने के कार्य को छोड़ उनमे न शान्ति है, न दीर्घोद्योग।

पर यह सब उन कुलटा स्त्रियो के विषय मे कहा गया है। ओह! स्त्रियो को रमणी-धर्म का पावित्र्य और गौरव समझाने को दिल कितना चाहता है। 'मेरी' की कहानी निराधार नही। सती स्त्री ससार का अवलम्ब है।

❀ ❀ ❀ ❀

रमणी-धर्म सब से ऊँचा सर्वश्रेष्ठ मानव-धर्म है, जिसके

विषय में मै ऊपर कह गया हूँ। गृहस्थ, जीवन और ब्रह्मचारी जीवन की तुलना करना—नागरिक जीवन और ग्राम-जीवन की तुलना करने के समान है।

ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवन साधारणतया मनुष्य के चित्त पर कोई असर नहीं डाल सकते ? ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवन दोनो के दो दो प्रकार हैं, एक सावूचित और दूसरा पापमय।

एक लड़की से, प्रत्येक लड़की से और खास कर तुझ से जिसके अन्दर आध्यात्मिक शक्ति ने काम करना शुरू कर दिया है, यह सिफ़ारिश करूँगा और सलाह दूँगा कि वह समाज की उन सब बातो की ओर ध्यान न दे, जिनके देखने-मात्र से विवाह की आवश्यकता की कल्पना या औचित्य दिखाई देता हो। यथार्थ मे विवाह से सम्बन्ध रखने वाली तमाम बातो को टालती रहे। उपन्यास, संगीत, फजूल गपशप, नाच, खेल, ताश, और चटकीले कपड़ो से भी दूर ही रहे। सचमुच, घर पर रह कर अपना कपड़ा सीना या कोई दूसरा उपयोगी काम करना, बाहर इधर-उधर अधिक से अधिक खुश-मिजाज लोगो के साथ घटो बिताने की अपेक्षा अधिक आनन्ददायक है। फिर वह आत्मा के लिए कितना फायदेमन्द होगा ?

पर समाज की यह कल्पना कि एक लड़की के लिए अविवाहित रहना, चरखा चलाते रहना, बहुत बुरा है—सत्य से उतनी ही दूर है जितनी कि अन्य कई महत्व-पूर्ण विषयो से सम्बन्ध रखनेवाली समाज की धारणाये है। ब्रह्मचारी रह कर मनुष्य,

जाति की सेवा करना, दीन-दुखियो की संकट में सहायता करना किसी भी विवाहित जीवन से कही अधिक श्रेयस्कर है। सभी मनुष्य इस कथन की सत्यता को स्वीकार न कर सकेंगे। परमात्मा ने जिनको निर्मल विवेक दिया है, वही इसकी यथार्थता का अनुभव कर सकेंगे। संसार के तमाम स्त्री-पुरषो ने इस प्रश्न को इसी पहलू से देखा है और सच्चे ब्रह्मचारियो का उसने आदर किया है। उनका प्रश्न नही जो मजबूरन् ब्रह्मचारी रहे, बल्कि उन श्रेष्ठ पुरुपो का जो कि स्वेच्छापूर्वक परमात्मा की सेवा के खातिर ब्रह्मचर्य-धर्म का पालन करते रहे। पर हमारे समाज मे वे मूर्ख समझे जाते हैं। यही वात उन लोगों के विषय मे भी चरितार्थ होती है जिन्होने परमात्मा के लिए गरीबी के वीर-धर्म को स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार किया है, जिन्होंने श्रीमान् होने से इन्कार कर दिया है। मै प्रत्येक लड़की को और तुझ को भी यही सलाह दूँगा कि हमेशा परमात्मा की सेवा का आदर्श अपने सामने रख। अर्थात् यदि तुझे विश्वास हो गया है कि विवाहित जीवन मे तू यह न कर सकेगी तो तेरा कर्तव्य है कि तू अविवाहित रह कर ही परमात्मा के दिव्य प्रकाश को अपने हृदय मे स्थान दे और उसी के सहारे अपनी जीवन-नौका को खेती जा। पर यदि किसी कारण से किसी पुरुप के साथ तेरा अटूट प्रेम हो जाय और तू उससे शादी कर ले तो अपने पत्नीत्व तथा मातृत्व मे ही संतोष न मान ले, जैसा कि अन्य स्त्रियाँ करती हैं। बल्कि इसका खयाल रख कि परिवार की पूर्ण सेवा करते हुए भी तू अपने जीवन के लक्ष्य की ओर—परमात्मा की सेवा की दिशा मे—बरावर

बढ़ती जा रही है। परिवार या बच्चो के प्रति अनन्य प्रेम तुम्हे परमात्मा से विमुख न करने पावे।

*   *   *   *

तुम्हारी उम्र और इसी परिस्थिति मे पड़े हुए, सभी युवक बड़े खतरे में हैं। यह समय तुम्हारे जीवन मे बड़ा महत्वपूर्ण है। इस समय जो आदते बनती हैं, वे हमेशा के लिए वज्रलेप हो जाती हैं। तुम पर किसी का नैतिक या धार्मिक नियन्त्रण नही है। प्रलोभन चारो ओर से तुम्हे लुभा रहे है। बस, उन्हे तुम जानते हो और जानते हो केवल उन नियमो की कठोरता को, जो तुम्हे उनसे रोकने के लिए बनाये गये हैं, पर तुम उनसे मुक्त होने का मौका देख रहे हो। तुम्हे यह अवस्था बिलकुल स्वाभाविक नज़र आती है। इसमे तुम्हारा कोई दोष नही है। क्योंकि उसी परि· स्थिति में तुम और तुम्हारे साथी मित्र छोटे से बड़े हुए हैं। पर फिर भी यह अवस्था तो निःसन्देह बुरी और खतरनाक है। खतर- नाक इस लिए है कि विषय-लालसा या प्रत्येक इच्छा की तृप्ति को ही यदि मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य बना ले, जैसा कि अक्सर युवक लोग करते हैं, तो उनकी बड़ी दुर्दशा होगी। क्योकि युवा- वस्था मे विकार और काम बड़ा प्रबल होता है। धीरे धीरे और प्रतिदिन अपनी इच्छा या काम की तृप्ति के लिए उन्हे नई नई वस्तु को खोजना पड़ेगा। क्योकि प्रकृति का यह नियम है कि विषय-लालसा की तृप्ति मे किसी एक वस्तु के उपभोग से दूसरी बार उतना आनन्द नही आता, जितना की पहली बार आता है। स्वभावतः ये विषयी युवक अन्धे की तरह नित्य नये खेल, तमाशे,

कपड़े, संगीत आदि की खोज मे दौड़ते फिरेगे। (एक यह भी कानून है कि आनन्द तो अङ्कगणित के नियम के अनुसार बढ़ता है, पर विषय-तृप्ति के साधनो को बढ़ाना पड़ता है।

और तमाम विषयो मे, काम सब से अधिक प्रबल है, जो स्त्री या पुरुष के प्रति प्रेम के रूप मे प्रकट होता है। काम-चेष्टाये, हस्त-मैथुन, स्त्री-संभोग आदि तक मनुष्य की पहुँच बात की बात मे हो जाती है। जब मनुष्य आखिरी सीमा तक पहुँच जाता है तब उसी आनन्द को बढ़ाने के लिए वह कृत्रिम उपायो को खोजता है। तम्बाकू, शराब, अश्लील संगीत आदि का आश्रय लिया जाता है।

यह एक इतनी मामूली बात है कि प्रत्येक ग़रीब या श्रीमान् युवक इसका अवलम्बन करता है। यदि वह संभल गया तब तो पवित्र जीवन व्यतीत करने लग जाता है। अन्यथा वह दीन-दुनिया से जाता है, जैसा कि मैने कई युवको को बरबाद होते अपनी ऑखो देखा है।

अपनी परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए केवल एक उपाय तुम्हारे लिए है। ठहर कर विचार करो, अपने आस पास गौर से देखो और एक आदर्श ढूँढ़ो (अर्थात् अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लो) और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में प्राण-पण से जुट पड़ो।

* * * *

मैने यह हमेशा सोचा है कि मनुष्य का नीति के विषय मे गम्भीर होने का सब से बढ़िया प्रमाण, उसका अपनी वैषयिकता पर कठोर नियन्त्रण करना ही है।

एन्० जिस जाल मे फँस गया, वह एक प्रामाणिक और सत्य शील स्वभाव के मनुष्य के लिए जैसा कि मै उसे समझता हूँ, बिलकुल स्वाभाविक है। कुछ सम्वन्ध क़ायम हो गया था। उसने कुछ छिपाना नही चाहा, बल्कि साफ़ साफ़ क़बूल कर उसको आध्यात्मिक रूप दे देना चाहा।

प्रेम से उत्पन्न होने वाली मानसिक अस्वस्थता को परमात्मा की सेवा मे लगा देने वाली उसकी कल्पना को मै पूर्ण रीति से समझ सकता हूँ। यह असभव नही। जो लोग अपने आप को इस परिस्थिति मे पाते है, वे अपनी शक्ति को इस धारा मे बहा कर उसको असीम बढ़ा सकते हैं और महत्वपूर्ण परिणाम दिखा सकते है। मैने यह कई वार देखा है। बल्कि मै ऐसे कई उदाहरण भी जानता हूँ। पर इसमें एक ख़तरा है। कई वार व्यक्तिगत भाव के अदृश्य होते ही तमाम शक्ति भी न जाने कहाँ ग़ायव हो जाती है और परमात्मा के कामो मे वे फिर किसी प्रकार की दिलचस्पी नही ले पाते। इसके भी कई उदाहरण मैने देखे है। इसके मानी यह है कि परमात्मा की सेवा निष्काम होनी चाहिए। किन्ही बाहरी बातों पर वह अवलम्बित न होनी चाहिए। बल्कि इसके विपरीत सभी बाहरी बातो का आधार यह होनी चाहिए। उसकी आवश्यकता और उससे उत्पन्न होने वाले आनन्द पर निर्भर रहनी चाहिए। इसी तरह मानव-जीवन के गौरव की तारीफ़ करके भी मनुष्य परमात्मा की सेवा मे लगाया जा सकता है, पर मनुष्य के अन्दर किसी व्यक्ति का विश्वास कम हुआ नही और उसकी ईश्वर-सेवा का भी अन्त हुआ नही।

यह सब तुम जानते हो। तुमने यही कई बार लिखा है। मैं तो एन्० के साथ अपने सहमत होने के विषय मे केवल एक बात और लिख देना चाहता हूँ। वह यही है कि स्त्री और पुरुष का वह मेल अच्छा है जिसका उद्देश परमात्मा की और मनुष्य-जाति की सेवा है। वैवाहिक या शारीरिक सम्मलिन उनकी इस सेवा-क्षमता को बढ़ा देता हो, सो बात नही। हाँ, कुछ लोगो की अशान्ति को, जिनका विकार बड़ा प्रबल होता है, यह ज़रूर मिटा देता है, जो परमात्मा की सेवा मे अपनी तमाम-शक्तियो को लगाने के मार्ग मे बड़ी बाधक साबित होती है। इसके कारण उन्हे जो शान्ति मिलती है उससे वे अपने चित्त को अधिक एकाग्र कर सकते हैं। इसलिए जहाँ ब्रह्मचर्य मानव जाति के लिए श्रेष्ठ आदर्श जीवन है, वहाँ कमज़ोर तबियत के लोगो के लिए विवाहित जीवन भी उनके विकार को शान्त कर उन्हे अधिक सेवाक्षम बनाने मे सहायक होता है। पर इसमे एक बात को कभी न भूलना चाहिए और यही मै एन्० से कहे देना चाहता हूँ। स्त्री-पुरुषो को यह अपने हृदय मे अंकित कर लेना चाहिए कि यह मिलनकी इच्छा उनमे इस लिए नही पैदा होती है कि वे इससे अपना दिल बहलावे, सुखोपभोग करें, कला—रसिकतापूर्वक सौदर्योपासना करें और सौदर्य का आनन्द लूटें और परमात्मा की सेवा करने के लिये शक्ति बढ़ावे, जैसा कि एन्० सोचता है। बल्कि यह प्रेम, यह मिलनेच्छा तो तुम्हे इस लिये दी गई है कि तुम केवल एक ही स्त्री या एक ही पुरुष से प्रेम कर सन्तानोत्पत्ति करो और उस विकार से मुक्त होने की दिल से कोशिश करो। इस शक्ति को या

मिलनेच्छा को यदि दूसरे तीसरे मार्ग में लगाया जायगा तो उससे सेवा तो कुछ न हो सकेगी, अलबत्ता मनुष्य अपनी दुर्दशा को बेहद बढ़ा लेगा।

इसीलिये मै इस बात में तुमसे पूरी तरह सहमत हूँ कि यह एक ऐसी हिस्सेदारी है या साझा है, जिसमे मनुष्य जितना ही अधिक सावधान रहे, उतना ही उसका कल्याण होगा। हाँ, कोई पूछ सकता है कि हम अपनी जाति के व्यक्तियो के साथ जिस मित्रता-पूर्वक रहते है, वैसे स्त्री, पुरुषो के साथ या पुरुष स्त्री-जाति की व्यक्तियो के साथ मित्रतापूर्वक क्यो नहीं रह सकते? क्या यह बुरा है? ठीक है, यदि हम अपने हृदय को कलङ्कित न होने दे तो हम जरूर ऐसा कर सकते है। हम निर्विकार चित्त से उनको जितना ही प्यार करे, अच्छा है। पर एक सच्चा और विवेकशील प्राणी फ़ौरन् कहेगा जैसा कि एन्० ने कहा है कि ऐसे सम्बन्ध बड़े नाजुक होते है। यदि आदमी अपने को धोखा न दे तो वह ध्यान से देख सकता है कि बनिस्बत पुरुषो के सान्निध्य के उसे स्त्रियो के सान्निध्य मे एक विशेष आनन्द आता है। वे आपस मे जल्दी जल्दी मिलने की उत्कण्ठा रखने लगते है। बाइसिकल आसानी से और अनायास दौड़ने लग जाती है और इसके लिये अवश्य ही कोई कारण होना जरूरी है। ज्यो ही एक सावधान प्रामाणिक पुरुष यह देखता है—यह जानकर कि अब हमारी गति और भी तेज हो जायगी और हमें विवाह-मंडप मे ले जाकर खड़ी कर देगी, वह फ़ौरन् अपनी गति को रोक लेता है और अपने को घोर पतन से बचा लेता है।

सन्तति-विशेप विपयक किताव को मैंने पढ़ा। *

अव इस पर क्या लिखूँ और क्या कहूँ। यदि कोई आकर यह दलील करे कि सव के साथ मैथुन करने मे वड़ा आनन्द आता है और वह ज़रा भी हानिकर नहीं, तो उसके समझाने के लिए जो दलीलें पेश करनी पड़ें, वही इसके विषय में भी दी जा सकती हैं। पर ऐसे आदमी को समझा कर उसे अपनी ग़लती दिखा देना असम्भव है जो यही अनुभव नही करता कि विपयोपभोग अपने और अपने साथी के लिए पातक है, अतः एक घृणित कार्य है, जो मनुष्य को पशु-जीवन मे ले जाकर खड़ा कर देता है। अरे, हाथी जैसा पशु भी इससे घृणा करता है।† यह तो एक ऐसा पातक है कि इसका प्रचालन तो तभी हो सकता है, जव यह सन्तानोत्पत्ति के लिए ही किया जा रहा हो जिसके लिए मनुष्य के अन्दर इसको प्रकृति ने रख दिया है। ऐसे वीभत्स पातक के विपय मे जो दलीले पेश करने वैठे, उसे समझाना असंभव नहीं तो क्या है?

---

* यह पत्र तारीख ११ जुलाई १९०१ का है। संतति—निरोध के कृत्रिम साधनों पर लिखी गई एक पुस्तक श्री च्ही चेरकाफ द्वारा उनके पास भेजी गई थी। उसी पर टाल्स्टाय ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

† प्राणि-शास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि हाथियों का समय प्रख्यात है। जब वे कैद हो जाते हैं, तव तो उनसे दूसरे वच्चे प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है। क्योंकि उनको यह ख्याल रहता है कि उनपर किसी की नज़र है।

माल्थूजियन् सिद्धान्त धोखादेह है। नीति-शास्त्र को, जो कि सर्व प्रधान है, वह गौण बताता है। इसलिए उस पर विचार करना ही मैं व्यर्थ समझता हूँ। मैं यह भी कहने और समझाने के झंझट मे पड़ना नहीं चाहता कि इन कृत्रिम साधनों से सन्तति-निरोध करने के कार्य मे और खून, कृत्रिम गर्भपात आदि पातको मे, किसी किस्म का फर्क नहीं है।

क्षमा करो, इस विषय मे गम्भीरता-पूर्वक कुछ कहते हुए लज्जा और घृणा होती है। बल्कि इसकी बुराई को सिद्ध करने की अनावश्यक बात को छोड़कर मनुष्य को तो केवल यह ख़याल करना चाहिये कि यह हमारे समाज मे कहाँ तक बढ़ गई है। इसने मनुष्य की नीतिशीलता को किसी हद तक मूर्च्छित कर दिया है। अब इस पर वाद-विवाद करने का समय नहीं रहा। हमें तो फ़ौरन इस बुराई को दूर करने मे जुट पड़ना चाहिए। अरे, एक मामूली अपढ़, शराबख़ोर रूसी किसान को भी, जो अनेकों भयकर मान्यताओं का शिकार है, इस बेवकूफ़ी के सुनते ही घिन आ जायगी। यह तो हमेशा विषयोपभोग को एक-पाप ही समझता आ रहा है। इन सुधरे हुए लोगो से, जो इतनी अच्छी तरह लिख सकते हैं, और जिन्हे अपने जंगलीपन का समर्थन करने के लिए बड़े बड़े सिद्धान्तो को नीचे खींचने मे तनिक भी लज्जा नहीं आती, वह मामूली अपढ़ किसान कई गुना ऊँचा है।

*　　*　　*　　*　　*

मनुष्य-जाति के अदर नीति-शास्त्र के ख़िलाफ़ ऐसा कोई अपराध नहीं, जिसे मनुष्य एक दूसरे से इतना गुप्त रखने की

कोशिश करते हों, जितना कि विपय-लालसा से सम्बन्ध रखने वाले अपराध है। न कोई ऐसा गुनाह इतना सर्व साधारण और भयंकर तथा विविध रूपो को धारण करने वाला ही है। इसके विपय मे जनता मे जितने भिन्न भिन्न मत है, उतने किसी दूसरे अपराध के विषय मे नही है। एक बात को जहाँ एक प्रकार के लोग अत्यंत बुरी और घृणायुक्त समझते है तहाँ दूसरे प्रकार के लोग उसीको सुख की एक मामूली सुविधा समझते है। दुनिया मे ऐसा एक भी अपराध नही जिसके विपय मे इतनी मक्कारी प्रकट की जा रही हो। यह एक ही गुनाह है जिससे सम्बन्ध होते ही फौरन् मनुष्य की नीतिमत्ता का पता लग जाता है। व्यक्ति और समाज को विनाश के द्वार पर ले जाकर खड़ा करने वाला, कोई अपराध इसके समान ही नही।

*　　*　　*　　*　　*

ये विचार उस मनुष्य के लिए बड़े सरल और स्पष्ट है जो सत्य को ढूंढ़ने की गरज से विचार करता है। पर जो अपनी ग़लतियो और दुर्गुण-भरे जीवन को अच्छा साबित करने की ग़रज से दलीले करता है, उसे तो ये विचार विचित्र, रहस्यमय और अन्यायपूर्ण भी दिखाई देगे।

*　　*　　*　　*　　*

इस काम का कभी अंत नही मिल सकता। अब भी मै इस विपय पर एक सा विचार करता रहता हूँ। अब भी मैं बराबर महसूस कर रहा हूँ कि अभी इस विषय मे बहुत-कुछ सोचने-

समझाने की आवश्यकता है। प्रत्येक आदमी इसकी आवश्यकता को जान सकता है। क्योकि विषय अत्यत व्यापक और गम्भीर है और मनुष्य की शक्ति बिलकुल मर्यादित और थोड़ी है।

इसलिए मेरा ख़याल है कि वे सब लोग, जिन्हे इस विषय में दिलचस्पी हो खूब काम करें। अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इसका खूब अनुशीलन-परिशीलन करके सबको अपने विचार प्रकट करने चाहिए। यद्यपि प्रत्येक आदमी अपने अपने विचार साफ़ साफ़ तौर से प्रकट कर दे तो बहुत सी बातें यो ही साफ़ हो जायँ। जिन बातो को हम बुरी प्रथा के कारण अब तक छिपाते रहे हैं वे प्रकट हो जायँगी। अब तक अंधेरे में रहने के कारण जो बातें विचित्र सी मालूम दे रही हैं, प्रकाश मे आते ही, उनकी विचित्रता जाती रहेगी। पुरानी प्रथा के कारण जो बुरी बातें अब तक मामूली रिवाज बनगई थी, उनकी बुराई प्रकट होने पर हम उन्हे छोड़ने लगेगे। कई सुविधाओ के कारण मै इस महत्वपूर्ण विषय की ओर समाज का ध्यान अधिक आकर्षित कर सका हूँ। अब तो यह आवश्यकता है कि अन्य लोग भी सब तरफ़ से इस काम को जारी रक्खे।

कुछ और अवतरण

(सन् १९०० से १९०८ तक के पत्रों तथा दिनचर्या आदि से)

प्रेम दो प्रकार का है—शारीरिक और आध्यात्मिक । काल्पनिक सुख या सहानुभूति से वैषयिक या शारीरिक प्रेम पैदा होता है । इसके विपरीत आध्यात्मिक प्रेम अधिकांश मे अपने दुर्भावो के साथ युद्ध करते हुए पैदा होता है । वह इस भावना से पैदा होता है कि मुझे किसी के साथ द्वेष नही, प्रेम करना चाहिए । यह प्रेम अक्सर शत्रुओ की तरफ़ दौड़ता है । यही सब से कीमती और सर्वश्रेष्ठ है ।

*　　*　　*　　*　　*

आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र से तुच्छ वैषयिक क्षेत्र में उतर आना सबके लिए साधारण है । पर युवा स्त्री-पुरुषो के जीवन मे यह स्थित्यंतर अधिक संख्या मे पाया जाता है । मनुष्य प्राणी की हैसियत से, उसके लिये कौन सा प्रेम स्वाभाविक है, यह प्रत्येक मनुष्य को जान लेना आवश्यक है ।

*　　*　　*　　*　　*

अलबत्ता वंश को कायम रखने के लिए विवाह एक अच्छी

और आवश्यक वस्तु है। पर इसके लिए माता-पिताओं में यह शक्ति और प्रबल इच्छा होनी चाहिए कि वे अपने बच्चों को केवल मोटे-ताजे ही नहीं बनावे, बल्कि उन्हें ईश्वर और मनुष्य की सेवा करने योग्य बनावें। पर ऐसा करने के लिए मनुष्य को दूसरे के परिश्रम पर नही, अपने परिश्रम पर जीना चाहिए। समाज से हम जितना लें, उससे अधिक उसे दें। हम लोगो मे तो यह कल्पना रूढ़ है कि जब हम अपने पेट भरने के साधनो को अपने अधीन कर ले, तब विवाह करें। पर होना चाहिए ठीक इसके विपरीत। केवल वही शादी करे जो बिना किसी साधन के जी सके और बच्चो का पालन-पोषण कर सके। केवल ऐसे पिता ही अपने बच्चो का अच्छी तरह पालन कर सकते और शिक्षित बना सकते हैं।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

तुम पूछते हो कि प्रत्येक स्त्री को केवल एक ही पति करना चाहिए और प्रत्येक पुरुष को केवल एक स्त्री, यह नियम किस सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है और इस नतीजे पर पहुँचते हो कि इसके टूटने से किसी बुराई की संभावना नहीं है।

यदि उपर्युक्त नियम को एक धार्मिक नियम समझा जाय तो तुम्हारी शका बिलकुल ठीक है। क्योकि धार्मिक नियम स्वतंत्र और सर्वोपरि होता है। पर यह नियम स्वतंत्र मूलभूत धार्मिक नियम नहीं है, हाँ, एक ऐसे नियम के आधार पर जरूर बनाया गया है। अपने पड़ोसी को प्यार करो। उसके साथ ठीक वैसा

हा सलूक करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वह तुमसे करे। इसी प्रकार निकम्मे न रहो, चोरी न करो आदि नियम भी मूलभूत धार्मिक नियमो से बनाये गये हैं। इससे पुराने ऋषि लोग ज़ाहिर करते हैं कि एक ही मूलभूत नियम से किस प्रकार मनुष्य के कल्याण के लिए कई नियम बनाये जा सकते हैं। सांसारिक सम्बन्धो से चोरी न करने का नियम, जीविका प्राप्त करने के कार्य से निकम्मा न रहने का, अर्थात् दूसरे के परिश्रम पर अपनी आजीविका न चलाने का, मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध से अपराधी या आततायी से बदला न लेने का, बल्कि शान्तिपूर्वक सहन करने और क्षमा करने का, और स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध से प्रत्येक को एक ही पुरुष या स्त्री से सम्बन्ध रखने का नियम बनाया गया।

धर्म-शास्त्रकार कहते हैं कि यदि इन नियमों का पालन मनुष्य करेगा तो उसका कल्याण होगा। संसार मे जैसा बरतने का रिवाज पड़ गया है, उसकी बनिस्बत इन नियमो के पालन से उससे अधिक फ़ायदा होगा। यदि कही इन नियमो के भंग या अवज्ञा से कोई बुराई न भी पैदा हुई हो तो भी उनका पालन करना ही अच्छा है। क्योकि अब तक के अनुभव से यही सिद्ध हुआ है कि इनका भंग करने से मनुष्य-जाति पर हजारो आपत्तियाँ आई है, दूसरे इस पातिव्रत या एक पत्नीव्रत के पालन से मनुष्य ब्रह्मचर्य के आदर्श के अधिक नज़दीक पहुँचता है।

तुम्हे एक युवक समझकर मैं चाहता हूँ कि तुम उस आदर्श

को और प्रत्येक सच्ची, अच्छी वस्तु के निकट तक पहुँच जाओ। यह केवल अन्तःशुद्धि से ही हो सकता है।

* * * * *

यदि पुरुष का किसी स्त्री से सम्बन्ध हो जाय तो उसे वह कदापि छोड़े नही—खास कर जब उसके बच्चा हो या होने की सम्भावना हो तब तो कदापि न छोड़े।

* * * * *

पति-पत्नी के एक होने के विषय मे धर्म-ग्रन्थ मे जो लिखा है, वह बहुत महत्वपूर्ण है। विवाह-ग्रन्थी द्वारा जो जोड़ दिये गये हैं वे कदापि बिछुड़ नही सकते। उन्हे कभी एक दूसरे को न छोड़ना चाहिए, न कोई ऐसा काम करना चाहिए जिससे परिवार मे दुर्भाव उत्पन्न हो जाय। तुम यह तभी कर सकते हो जब परमात्मा और अपनी अन्तरात्मा के नज़दीक तुम्हारे लिए और कुछ करना असम्भव हो।

* * * * *

मेरा ख़याल है कि पति का अपनी स्त्री को छोड़ना और ख़ासकर तब, जब उसके बच्चा हो, बहुत बुरा है। इसका परिणाम बहुत भयंकर होता है, उस बेचारी के लिए नही, बल्कि अपनी पत्नी को छोड़नेवाले उस पुरुष के लिए भी। मेरा ख़याल है कि अन्य लोगो की भाँति तुमने भी यह समझ की ग़लती की है कि विवाहित जीवन का उद्देश सुखोपभोग है। नही, यह विचार बिलकुल ग़लत है। विवाहित जीवन मे तो सुख बढ़ते नही,

घटते हैं। क्योंकि इस नवीन जिम्मेदारी के साथ साथ कई कठिन कर्तव्य मनुष्य पर आ पड़ते है। विवाहित जीवन का उद्देश, जिसकी ओर लोग इतने जोरो से आकर्षित होते हैं, सुखो का बढ़ना नही, बल्कि मनुष्य-जीवन के कर्तव्यो की पूर्ति—अर्थात् संतानोत्पत्ति है।

*　　❀　　❀　　❀　　*

तुम्हारे पुत्र के विषय मे मै यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि वे सब विवाह अच्छे हैं और सम्मान योग्य है जिनमे पति-पत्नी यह प्रतिज्ञा करते है कि वे एक दूसरे के प्रति प्रामाणिक रहेगे। फिर यदि वे मंत्रपूत भी न हो तो कोई परवाह नहीं।

*　　*　　*　　❀　　*

मेरा ख्याल है कि तुम उस सर्व-साधारण और अत्यंत हानिकर धारणा के शिकार हो रहे हो कि प्रेम-बद्ध होने के मानी सचमुच प्रेम करना है और तुम उसे एक अच्छी चीज भी जान रहे हो। पर बात ऐसी नहीं है। वह एक ख़राब और बड़ा हानिकर विकार है। उसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है। एक धार्मिक या नैतिक कानून का ज्ञान होने के पहले भले ही आदमी उसमे डूब सकता है; पर प्रेम धर्म का ज्ञान होते ही इस तरह के वैषयिक प्रेम के चक्कर मे आदमी कभी पड़ ही नही सकता। वही प्रेम सच्चा है जो आत्मविस्मरणशील और निस्वार्थ है। तुम अपनी पत्नी मे इस प्रेम को देख सकते हो। वह तुम्हे सच्चा आनंद देगा। दूसरे व्यक्ति के प्रति यह आकर्षण तुम्हे सिवाय दुःख के कुछ

दे ही नही सकता, चाहे तुम उसमे कितने ही डूब जाओ, वल्कि उलटा तुम्हारे नीतिशील जीवन को वह नीचे गिरा देगा ।

* * * * ❀

तुम सोचते हो कि तुम्हारा प्रधान उद्देश उसको वचाना है । पर इसमे तुम अपने आपको धोखा दे रहे हो । यदि तुम्हारी प्रधान इच्छा यही होती, उस (स्त्री) की नही, कि एक मनुष्य-प्राणी की सेवा की जाय तो इसे पूर्ण करने के लिए तुम्हे वहुत अवकाश था । नहीं, तुम्हारी प्रधान इच्छा सेवा नहीं, विषय-क्षुधा की शान्ति है, और वह वहुत वढ़ गई है । इसलिए यदि तुम मेरी सलाह चाहो तो मै तुम्हे यही कहूँगा कि तुम उसके साथ कोई सम्वन्ध न रक्खो । वल्कि अपने अंतःकरण मे किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं, समस्त मनुष्य-जाति के लिए प्रेम उत्पन्न करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दो । यही प्रत्येक मनुष्य का जीवन-काय है ।

* * ❀ * *

वैपयिकता मनुष्य-जाति के कष्टो के प्रधान कारणो मे से एक है । विषय-वासना अकल्याण की जड़ है । इसीलिए अनादि काल से मनुष्य-जाति इससे सम्वन्ध रखने वाली तमाम वातो के विपय मे ऐसे नियम वनाती आई है जिससे कष्टो का परिमाण कम से कम होता जाय । इन नियमो को भंग करने वाले अनेक कष्टो को भोगते हैं । केवल वासना के अधीन अपने को कर देना विवेक से हाथ धोना है । यह एक अत्यत महत्वपूर्ण, कठिन और उलझनों से

भरा हुआ सवाल है। ऐसी अवस्था मे यदि आदमी विवेक से काम न ले तो अवश्य ही उसमे और पशु में कोई अंतर नही रह जायगा। लोग कहते है, प्रेम एक बड़ा ही उच्च और नीतियुक्त भाव है। ठीक है। पर यहाँ तो प्रत्येक आदमी अपनी वासना को प्रेम समझकर उसे उच्च और दिव्य कहने लग जाता है। अच्छा होता यदि इसकी परीक्षा करने का कोई साधन होता, जिससे विकार और प्रेम-धर्म को मनुष्य स्पष्ट रूप से समझ सकता। पर ऐसा कोई साधन अभी मनुष्य जाति को नही मिला जिससे वह असानी से इसका निर्णय कर सके। इसलिए यदि तुम केवल भावना को ही अपना पथ-दर्शक बनाओगे तो वही नतीजा होगा जो भूल से चोर के हाथो मे खज़ाने की चाबी सौंपने से होता है। विकार तुम्हे पशु बना देगा और दुःखो के महासागर मे ले जाकर डुबो देगा।

❀ * * ❀

मैथुन से अधिक घृणित कार्य और क्या हो सकता है? यदि मनुष्य के दिल मे इसके प्रति घृणा उत्पन्न करना हो तो आदमी इस कुकार्य का सविस्तार हूबहू वर्णन कर दे। इसलिए जो राष्ट्र पशु-जीवन से ऊँचे उठ गये है, सभी को मैथुन और उसकी इन्द्रियो के नाम मात्र से लज्जा आती है। यदि तुम अपने आपसे इसका कारण पूछो तो मालूम हो जायगा। वह सरल है। चूँकि मनुष्य एक विवेकशील और आध्यात्मिक प्राणी है, इसलिए उसे चाहिए कि वह इस पाशविक विकार को रोके।

लाचार होकर वह तभी इसके वश में होकर जब वह इससे झगड़ न सके। यह पाशविक विकार मनुष्य के अन्दर इसलिए रख दिया गया है कि मनुष्य, जहाँ तक आवश्यक हो, अपनी जाति को कायम रक्खे। मानव-स्वभाव का वह कितना घोर पतन है जब मनुष्य इस पाशविक विकार को सिंहासन पर अभिषिक्त कर इसकी सहायक इन्द्रियों की तारीफों के पुल बाँधता है। पर आज-कल के चित्रकार, संगीत-शास्त्री और शिल्पकार सभी ललित-कलाविद् सब यही करते हैं।

सभी बाह्य इन्द्रियों को लुभाने वाली चीजों से विकार प्रबल होता है। घर की सजावट, चटकीले कपड़े, संगीत, सुगंध, स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर मृदुल स्पर्श वाली चीजें—सभी विकारोत्तेजक होती हैं। भव्यता, प्रकाश, सूर्य का वैभव, वृक्ष, हरी घास, आकाश, निराभरण मनुष्य-शरीर, पक्षियों का गान, पुष्पों की सुगंध, सादा भोजन, फल और प्राकृतिक वस्तुओं के स्पर्श—विकार को उत्तेजित नहीं करते।

❀ ❀ ❀ ❀

मनुष्य को बुद्धि और भाषा इसलिए नहीं दी गई है कि वह अपने पाशविक विकारों के समर्थन के लिए नवीन युक्तियों को ढूँढ कर धोखा देने वाली भाषा में पेश करे। बुद्धि और भाषा उसे इसलिए दी गई है कि वह शैतान की लुभावनी दलीलों को तोड़ने के लिए माकूल दलीलें ढूँढे और निर्भ्रान्त भाषा द्वारा उनके धुर्रें उड़ा दे, विवेक-बुद्धि के आदेशों को समझे और

उनका पालन करे। विवेक बुद्धि ने मनुष्य को पहले ही से सूचित कर रक्खा है कि मनुष्य को अपनी वैषयिकता पर खूब नियन्त्रण रखना चाहिए, अन्यथा उस पर महान् आपत्तियाँ पड़े बिना न रहेंगी। इस विषय मे सरल से सरल और साफ़ से साफ़ कर्तव्य यही है कि स्त्री और पुरुष जो एक बार पारस्परिक विषय-बन्धन से सम्मिलित हो गये हो, अपने को हमेशा के लिए एक अपर पाश में बँधा हुआ समझे और एक दूसरे के प्रति सच्चे रहें। बस, इसीका नाम विवाह है। असंयम से उत्पन्न होने वाली महान् आपत्तियो से बचने के लिए तथा शिशु-संवर्धन के काम को सरल करने के लिए इस सस्कार की स्थापना की गई है।

* * * *

शारीरिक प्रलोभनो से झगड़ना ही मानव-जीवन के कर्तव्यों की विशेषता है। जीवन का आनंद इस युद्ध ही मे है। हर हालत मे मनुष्य यह प्रयत्न कर सकता है और उसे विजय मिल सकती है। वही विजय प्राप्त नही कर सकता जो इस नियम मे विश्वास नही करता। पर बिना प्रयत्न के विश्वास उत्पन्न भी नही हो सकता। अतः सब से पहला पाठ है अनुभव। प्रयत्न करो, हृदय से प्रयत्न करो और इस कथन की सत्यता को जाँच लो।

* * * *

जो पतन से बचा हुआ है, उसे चाहिए कि इसी तरह बचे रहने के लिए वह अपनी तमाम शक्तियो का उपयोग करे। क्योंकि गिर जाने पर फिर उठना सैकड़ो नही, हज़ारों गुना कठिन हो

जायगा। संयम का पालन करना विवाहित और अविवाहित दोनों के लिए श्रेयस्कर है। तुम इसकी आवश्यकता मे भी सन्देह करते हो। पर मै इसका कारण समझ सकता हूँ। तुम ऐसे लोगो से घिरे हुए हो जो इस बात का बडे जोरो से समर्थन करते हैं कि संयम अनावश्यक ही नही, बल्कि हानिकर भी है।

तब पहले मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह संयम की आवश्यकता को समझ ले। वह समझ ले कि विवेकशील मनुष्य के लिए विकारो से झगड़ना अप्राकृतिक नहीं, बल्कि उसके जीवन का पहला नियम है। मनुष्य केवल पशु नहीं, एक विवेकशील प्राणी है। पशु ज्यादह खाते है; पर उनका वह खाना अन्य प्राणियों के साथ झगड़ने मे काम आ जाता है। क्योंकि एक जाति का प्राणी कई बार दूसरे का शिकार होता है। कई अन्य बाहरी बातें भी हैं जिन्हे बदलना उनकी शक्ति के बाहर है। पर मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी है। वह सब से पहले अन्य मनुष्यो तथा प्राणियो के साथ जीवन-कलह के स्थान पर विवेकशील व्यवहार को प्रतिष्टित कर सकता है। दूसरे, वह उन बातो का प्रतिकार कर सकता है जो उसके आध्यात्मिक जीवन के लिए हानिकर हो। यह सत्य है कि मनुष्य अभी अपने विवेक से काम नहीं ले रहा है और अपने ही जैसे प्राणियो के नाश पर तुला हुआ है। हजारो आदमी और बालक जाड़े, रोग और असीम परिश्रम के कारण मरते हैं। पर नि:सन्देह एक समय ऐसा आवेगा, जब विवेकशील प्राणी एक दूसरे को मारने से बाज आवेगे। और अपने जीवन की रचना इस तरह करेंगे कि उनकी संख्या आज

की तरह पचास वर्षों में दूनी न होने पावेगी। वे इस तरह सन्तानो-त्पादन नहीं करेंगे जिससे कुछ ही सदियो मे पृथ्वी मनुष्यो को धारण ही न कर सके। फिर वे क्या करेंगे ? एक दूसरे की हत्या करेंगे ? नहीं, यह असंभव और अनावश्यक है। अनावश्यक इस लिए कि प्रकृति ने मनुष्य के अंदर वैषयिकता और अन्य पाश-विक वृत्तियो के साथ २ ब्रह्मचर्य तथा पवित्रता की पोषक आध्या-त्मिक वृत्ति भी मौजूद है। यह सत्प्रवृत्ति प्रत्येक लड़के और लड़की मे मौजूद रहती है। और प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इसकी रक्षा और संवर्धन करे। नीतिशील स्त्री-पुरुषों के सौभाग्य-पतन का नाम विवाह है। विवाह के मानी हैं—वैषयिकता को एक ही व्यक्ति तक संयत कर देना। अतः स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य और पवित्रता की उस वृत्ति का विकास विवाहित तथा अविवाहित जीवन मे भी एकसा लाभदायक है।

इसलिए तुम्हारे पत्र के पढ़ते ही मेरे दिमाग़ में जो विचार आये उनको यहाँ लिख दिया है। एक बूढ़े आदमी की सी हार्दिक सलाह देकर मैं इस पत्र को ख़तम करता हूँ।

सत्य और सत् के लिए सत् का प्रयत्न करते रहना। अपनी पवित्रता की रक्षा मे सारी शक्ति लगा देना। प्रलोभनो के साथ खूब झगड़ना। किसी हालत में हिम्मत न हारना। लगाम को कभी ढीली न करना। तुम पूछोगे झगडे कैसे ? क्या किया जाय ? क्या न किया जाय ? निःसन्देह तुम व्यावहारिक उपदेश जानते हो। यदि न भी जानते हो तो उस विषय पर लिखी किसी किताब को विवेकपूर्वक पढ़ लेना। शराब न पीओ, मांस न खाओ, धूम्रपान

न करो, उछृंखल वृत्तिवाले साथियो के साथ न रहो। विशेष कर हलकी वृत्तियो वाली स्त्रियो से सदा दूर रहो, यह सब तुम जानते हो या सीख सकते हो। मेरा तो उपदेश यही है और मैं उस पर खूब जोर दूँगा कि अपने जीवन के ध्येय को समझो। याद रक्खो कि शारीरिक विषय-सुख नहीं बल्कि ईश्वर के आदेशों का पालन मनुष्य के जीवन का लक्ष्य और उद्देश है। विलास-युक्त नहीं, आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करो!

* * * *

ब्रह्मचर्य वह आदर्श है, जिसके लिए प्रत्येक मनुष्य को हर हालत मे और हर समय प्रयत्न करना चाहिए। जितना ही तुम उसके नजदीक जाओगे, उतना ही अधिक परमात्मा की दृष्टि में प्यारे होगे और अपना अधिक कल्याण करोगे। विलासी बनकर नही, बल्कि पवित्रता युक्त जीवन व्यतीत कर ही मनुष्य परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है।

महापुरुषों के अनमोल उपदेश

जिसका वीर्य ब्रह्मचर्य के द्वारा वशीभूत है, उसका मन वशीभूत होता है। मन के वशीभूत होने से अन्तःकरण मे ब्रह्मज्ञान का स्फुरण होता है। ये ही सब आध्यात्मिक उन्नति होने के प्रमाण है।

*   *   *   *

ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए प्रति समय प्रयत्न करना चाहिए। वीर्य से ही आत्मा अमरत्व को प्राप्त होता है। शरीर को संयत और सुयोग्य बनाने के लिए, नियत समय तक प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ब्रह्मचारी बनना चाहिए।

*   *   *   *

जिसके शरीर मे वीर्य सुरक्षित रहता है, उसे आरोग्य, बुद्धि, बल और पराक्रम बढ़के अमोघ सुख प्राप्त होता है।

*   *   *   *

इन्द्रियो के विषय मे 'भोग-विलास मे' सुख को मत ढूंढ़ो। हे इन्द्रियो के दास! अपनी इस निष्फल और बाहरी खोज को छोड़ दो! अमरत्व का महासागर तुम्हारे भीतर है। स्वर्ग का राज्य तुम्हारे ही भीतर है। वह सब ब्रह्मचर्य से ही सध सकता है।

*   *   *   *

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सर्वसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टाल्सटाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≡) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जावेंगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोडा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियो का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का—यह 'सस्ता मण्डल' फले-फूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएं और
स्थायी ग्राहक होने के दो नियम

खूब ध्यान से सब नियमो को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकखर्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी-'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया खर्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की—जिस वर्ष में वे ग्राहक बन—सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फ़ीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जावगी, उनका लागत मूल्य और पोष्ट खर्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी.पी में =) रजिस्ट्री खर्च व =) वी. पी खर्च तथा पोस्टेज खर्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पीछे क़रीब ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) ही पोस्ट खर्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

क्योंकि इससे आपको पोस्ट खर्च में भी किफ़ायत रहेगी और प्रवेश फीस के ॥) या १) भी आपसे नही लिये जावेंगे।

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे दो रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ६) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ६) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी॰ पी॰ द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

(२) ग्राहकों को पत्र देते समय अपना ग्राहक नम्बर जरूर लिखना चाहिये। इसमें भूल न रहे।

(३) मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकों के भी यदि आप स्थाई ग्राहक बनना चाहें तो ॥) प्रवेश फ़ीस भेज कर बन सकते हैं। जब जब पुस्तकें निकलेंगी उनको लागत मूल्य से वी० पी० करके भेज दी जावेंगी।

सस्ती-साहित्य-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (ले०—महात्मा गांधी)

(१) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≶) सर्वसाधारण से ॥।)

म० गांधीजी लिखते हैं—"बहुत समय से मैं सोच रहा था कि इस सत्याग्रह-संग्राम का इतिहास लिखूँ, क्योंकि इसका कितना ही अंश मैं ही लिख सकता हूँ। कौनसी बात किस हेतु से की गई है, यह तो युद्ध का सचालक ही जान सकता है। सत्याग्रह के सिद्धात का सच्चा ज्ञान लोगों में हो, इसलिये यह पुस्तक लिखी गई है।" सरस्वती, कर्मवीर, प्रताप आदि पत्रों ने इस पुस्तक के दिव्य विचारों की प्रशंसा की है।

(२) **शिवाजी की योग्यता**—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०) पृष्ठ-संख्या १६२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ।) सर्वसाधारण से ।≈) प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिए।

(३) **दिव्य जीवन**—अर्थात् उत्तम विचारों का जीवन पर प्रभाव। संसार प्रसिद्ध स्विट् मार्सडन के The Miracles of Right Thoughts का हिंदी अनुवाद। पृष्ठ संख्या १२६, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।) सर्व साधारण से ।≈) चौथी बार छपी है।

(४) **भारत के स्त्री-रत्न**—(पाँच भाग) इस ग्रंथ में वैदिक काल से लगाकर आजतक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य-परायण, विद्वान् और भक्त कोई ५०० स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त होगा। हिंदी में इतना बड़ा ग्रन्थ आज तक नहीं निकला। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ॥।) सर्वसाधारण से १) आगे के भाग शीघ्र छपेंगे।

(५) **व्यावहारिक सभ्यता**—यह पुस्तक बालक, वृद्ध, पुरुष, स्त्री

सभी को उपयोगी है, परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)॥ दूसरी बार छपी है

(६) आत्मोपदेश—(यूनान के प्रसिद्ध तत्वज्ञानी महात्मा एपिक्टेटस के विचार) पृष्ठ १०४, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)

(७) क्या करें ?—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसमें मनुष्य जाति के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर बहुत ही सुंदर और मार्मिक विवेचन किया गया है। महात्मा गांधी जी लिखते हैं— "इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मूल्य केवल ॥=) स्थाई ग्राहकों से ।≡) दूसरा भाग भी छप रहा है इसका मूल्य भी लगभग यही रहेगा।

(८) कलवार की करतूत—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इस नाटक में शराब पीने के दुष्परिणाम बड़ी सुंदर रीति से दिखलाये गये हैं। पृष्ठ ४० मूल्य ‌-)॥ स्थाई ग्राहकों से -)।

(९) जीवन-साहित्य—म० गांधी के सत्याग्रह आश्रम के प्रसिद्ध विचारक और लेखक काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) स्थाई ग्राहकों से ।=) इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त नौ पुस्तकें १६८६ पृष्ठों की इस माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुई है अब दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १९२७ में जो जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनका नोटिस कवर के चौथे पृष्ठ पर छपा है।

सस्ती-प्रकीर्ण माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग—(ले० अध्यात्म योगी श्री अश्विनीकुमार दत्त। इसमें निष्काम कर्म किस प्रकार किये जाते हैं—सच्चा कर्मवीर किसे कहते हैं— आदि बातें बड़ी खूबी से बताई गई हैं। पृष्ठ सं० १५२, मूल्य केवल ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—सीता जी की 'अग्नि-परीक्षा'

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।-) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा-सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, वर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं-) बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य केवल ।ी) स्थायी ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टैरेंस मेक्स्वीनी की Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्म सिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १७६, मूल्य ।≡) स्थायी ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीशरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उसका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥=) स्थायी ग्राहकों से ।≡)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग ३५० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में एक पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

☞ हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये!

पता—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर।